परिचय और धन्यवाद

आजकल सर्वत्र विद्वानों के मुख से यही सुना जाता है कि सब बातों में अमेरिका ही सर्व शिरोमणि देश है। कोई भी नवीन आविष्कार हो वह अमेरिका से ही होगा। उन्नति-पथ पर अग्रसर होने वाले देशों में इसी का नाम सबके मुख पर है। वह ऐहिक साधक, विज्ञान, भौतिक शिक्षा, कला आदि में तो सबसे बढ़ा चढ़ा है ही, किन्तु अब वह अध्यात्म विद्या में भी बाजी मार रहा है। भोगों की परम सीमा पर पहुँच कर वे (अमेरिकन) ऊब गये हैं और उन्हें यह ज्ञात हो गया है कि भौतिक वस्तुओं से सच्चो सुख और शांति नहीं मिल सकती। सच्ची शांति आत्म-ज्ञान से ही प्राप्त हो सकती है - वह भी अन्तर से ही प्राप्त होगी बाहर से नहीं। वे भारत और उसके अध्यात्म साहित्य की ओर सतृष्ण नेत्र देख रहे हैं और आत्म-ज्ञान तथा शान्ति के लिये अत्यंत छटपटा रहे हैं।

जिस पुस्तक का रुपान्तर आपके सन्मुख उपस्थित हो रहा है उसके लेखक हैं अमेरिका के प्रसिद्ध मनोविज्ञानी डॉ० वी० एटकिनसन। आप मानस शास्त्र के सिद्ध हस्त लेखक और उच्च अभ्यासी हैं। प्राच्य शास्त्रों पर आपका खासा अधिकार है। अमेरिकन जनता में भारतवर्ष की प्राचीन आत्म विद्या के प्रसार के लिये आपने

अपना नाम योगी रामाचरक रख कर, कई पुस्तकों—हठयोग, राजयोग, श्वास-विज्ञान आदि की रचना की है। यह "अलौकिक चिकित्सा विज्ञान" भी आपकी "Psychic Healing" नामक पुस्तक का रूपान्तर है। आप Advanced Thought 'मानस-शास्त्र' पत्र के संपादक हैं- आजतक आपने मनोबल, मनः शक्ति, मानस शास्त्र पर स्वतंत्र रूपेण सैकडों पुस्तकें लिख डाली हैं। भारत के अगाध अध्यात्म सागर से विश्व को जीवन विन्दु प्रदान करने के अथक प्रयत्न करने के लिये हम आपके अत्यन्त आभारी हैं।

पं० रामलाल जी पहाड़ा स्वास्थ्योपदेशक हाई स्कूल, खंडवा सी० पी० को जो अध्यात्म विद्या के अनन्य प्रेमी सरल साधु स्वभाव पुरुष हैं और जो निष्काम भाव से रूपान्तरकर पाठकों के लिये इस स्वर्ण संयोग के आयोजक हैं -एतदर्थ अनेकानेक धन्यवाद।

अन्त में हम पं० विश्वम्भरदत्त जी सकलानी देहरादून को भी जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में परम प्रोत्साह प्रदान किया है भूरि भूरि आत्म-धन्यवाद देतेहैं।

दुर्गाशंकर नागर

भूमिका

अब यह निर्विवाद सिद्ध होगया है कि सम्पूर्ण संसार विचार ही का स्वरूप है भीतर बाहर सर्वत्र विचार ही का स्पन्दन है। एक मात्र विचार ही की सार्व भौम सत्ता है। यह ही नहीं सिवाय विचार के चराचर पदार्थों का अस्तित्व तो दूर जन्म-मरण भी नहीं है। कोई ऐसा कार्य नहीं, जो इस विश्वदाता से असाध्य हो। इसी से इस सर्वगत विज्ञान – मारण – मोहनवशीकरण आकर्पण स्तंभन और उच्चाटन प्रयोगों तथा मंत्रों का अतीत भारत में घर घर प्रचार था। बच्चा बच्चा इस फन में अपनी सानी नहीं रखता था, किंतु दुर्भाग्य से आज वे ही हमारी आदि विद्याएं विदेश वासी हो खूब फल रही हैं। यदि उनके बारे में कोई चर्चा छेड़ी जाती है तो हमारे आधुनिक शिक्षा-विकृत--मस्तिष्क उन्हें सर्वथा असत्य बतला कर खूब खाका उड़ाने लगते हैं। वे जिन सभ्य शिरोमणि देशों के वेष-भाषा को साभिमान अपना रहे हैं उनमें इनका कितना महत्व और प्रचार बढ़ रहा है, भली भांति जानते हुए भी 'आंखों वाले अंधे' की लोकोक्ति चरितार्थ करते हैं। परातम का कितना घृणित दृश्य है! जीवन बल का विपर्यय-- भाव इस से अधिक कहां होगा।

परंतु वह समय बड़ी ही तीव्रता से दौड़ा आरहा है जब कि इन प्रयोगों और मंत्रों की सत्यता के अविश्वास

का लेश भी न रहेगा। विगत ५० वर्ष से अमेरिका में विचार बल द्वारा व्याधि निवारण का भारी प्रचार हो रहा है। अब वहां के मानस शास्त्रियों को विचार का अनन्त अप्रतिहत बल तथा सर्व कार्य सिद्धि का पूर्ण सामर्थ्य विदित होरहा है।

वहां आज ल मिसेज एडी बेकर की क्रिश्चिन साइन्स सोसाइटी बड़ी ही उन्नति पर है। उसके दस लाख से भी अधिक अनुयायी हैं। उसके ५००० सदस्य अध्यात्म शक्ति द्वारा ४० लाख रोगियों को प्रति वर्ष सफलता से भला चंगा करते हैं। बड़े बड़े डाक्टर सर्जनों के असाध्य कह देने पर हताश, मरणोन्मुख सहस्रों रोगियों को इस संस्था ने पुनर्जीवन दिया है यही कारण है कि बड़े बड़े कर्मचारी डाक्टर सर्जन आदि इस सोसाइटी के प्रबल विरुद्ध होने पर भी दिनों दिन इसकी अधिकाधिक उन्नति हो रही है।

इस संस्था में स्त्रियां ही विशेष कार्य कर्ता हैं। एकाध को छोड़ कोई भी बड़ा पद उनसे खाली नहीं है। इस संस्था के मुख्य नेता आर्किबोल्ड मेकक्लेलन एवं मिसेस ओगस्टा स्टेटसन् हैं। जब मिसेस ओगस्टा स्टेटसन् इस सोसाइटी में शामिल हुई तब उस पास पहिने के पूरे कपड़े भी न थे। उसने थोड़े समय में ही अध्यात्म विद्या द्वारा लाखों रुपयों की सम्पत्ति प्राप्त कर ली। डाक्टरों सर्जनों से निराश हो कर आए हुए मरणासन्न रोगियों को उसने अच्छा किया। एक रोगी से ६ लाख २५ हजार रुपये मिले

दूसरे से तीन लाख रुपये कमाए । इस प्रकार लाखों रुपये इकट्ठा करके एक, एक करोड़ लागत का विशाल मंदिर बनाया । और वहीं उसकी अधिष्ठात्री बन चिकित्सा कार्य करने लगी।

इस असमर्थ निर्धना स्त्री के इस प्रचुर द्रव्य संपादन का रहस्य तुम्हें असंभव जंचता होगा । परंतु क्या न्यूयार्क के लोग निरे काष्ट प्रतिमा हैं जो बिना अपना रोग मिटे या लाभ हुए अपने खरे पसीने की कमाई यों ही लुटा देते ? नहीं कदापि नहीं ? तुम वहां जाओ और लाखों ढोंग धतूरे करो परंतु एक फूटी कोड़ी देना तो दूर कोई तुम से बात भी न करेगा । यह उस स्त्री का रोग मेटने का ही अद्भुत सामर्थ्य है जो लोग थैलियां की थैलियां देनेमें तनिक हृदय नहीं हिलाते । विचारसक्ते हो, यदि विचार द्वारा रोग मेटने की कला एक धूर्त्त विद्या ही है तो न्यूयार्क जैसे विश्व विख्यात नगर और बड़े बड़े डाक्टरों की परम प्रतिद्वन्दिता में एक स्त्री के ये ढोंग धतूरे ५० वर्ष तक क्या निर्विघ्न चला करते ?

मिस्टर मेक कलीलेन, मिसेस स्टेटसन् के इस बढ़ते हुए प्रभाव और पद को न सह सका । वह स्वार्थ-वश हो इस स्त्री को, उसके मंदिर तथा पद से हटाने का षड्यन्त्र रचने लगा । दैव योग से भेद खुल गया । फिर क्या था ? मिसेस स्टेटसन् इसका प्रतिकार प्रयत्न करने लगी । स्वभावतः उसमें राक्षस भाव उदय हो गया और वह मेकक्लो-

लेन को मारने पर उतारु होगई। संसार – प्रयुक्त शस्त्र से नहीं, बल्कि विचार रूपी सूक्ष्म अदृश्य शस्त्र से। यह पहिले बता चुके हैं कि विचार बिजली से अधिक तीव्र गामी और प्रत्येक कार्य साधक हैं। 'न्यूयार्क मेल' ने इस घटना के विषय में लिखा था कि "हर रोज या कुछ दिनों के अन्तर से मिसेस स्टेट्सन् अपने अनुयायियों के साथ, एकाग्रचित्त हो आखें बंद कर एक अंधेरी कोठरी में बैठती और मि० मेककजीलेन के विनाशार्थ बोस्टन में विचारान्दोलन प्रेरित करती। भेद खुल गया और उसने मिसेस स्टेटसन् पर मारने का अभियोग चलाया। उनके मिल कर बैठने को भंग किया तब कहीं अपने प्राण बचा पाया। इसी मिसेस स्टेटसन् ने कुछ समय पूर्व बेबोक और उसकी पत्नी पर मारण-प्रयोग किया था अन्त को यह दम्पति मि० स्टेटसन् की इच्छानुसार वर्तकर जीवित रह सका था। इस दम्पति पर प्रेरित विचारों का क्या प्रभाव हुआ था उसे भी सुनिये :—

मि० बेबोक की पत्नी लिखती है कि 'आधी रात में खिड़की से बर्फ जैसी वायु लगने के कारण मैं जग उठी। दांत कड़ कड़ाने लगे। मुर्दे जैसे मुखाकृति वाला प्रकाश मेरी ओर दौड़ने लगा, मेरे अंग प्रत्यंग में विद्युत्वेदना सी और मिसेस स्टेटसन् की क्रूर और लाल लाल आंखें चारों ओर भासने लगी। मैं दौड़कर एकदम खूब खौलते हुए पानी के टब में जा बैठी, परंतु वह मुझे थोड़ा भी गरम नहीं मालुम हुआ। ठंड और कंपकंपी वैसी ही बनी रही।

मेरा इस भांति कराल काल से युद्ध हो ही रहा था कि मेरे पति भी पागल की भांति परम प्रलाप करने लगे—हे भगवान ! हे नाथ ! यह मुझे क्या हो रहा है ? क्या मैं अभी अनंत निद्रा की तयारी में हूँ। यह श्वास क्यों रुकता जा रहा है। यह–क्यों–द–म–घु–ट–रहा–है।

बहुधा लोग कहते हैं कि विचार बल से अनभिज्ञ व्यक्ति यह प्रयोग नहीं कर सक्ते। परंतु कुछ वर्ष पूर्व क्या डा० अन्ना ने बीबी सेक्टर के प्राण नहीं लिए थे, वे कौन इस विद्या के जानकार थे ?"

विचार बल के ऐसे सैकड़ों प्रयोग आजकल अमेरिका में होने लगे हैं। वहां प्रति मास ऐसे कई उदाहरण बना करते हैं। इसलिए बहुतों को अपने प्राण बचाने की चिन्ता चढ़ी रहती है।

इस प्रसंगपात् से हमारा तात्पर्य्य यह नहीं है कि लोग इस कुकृत्य के लिए प्रवृत्त हो—अभिप्रेत तो यह है कि लोग विचार के अनंत बल और महत्व को समझें और जाने कि कुमार्ग से विचार-प्रवाह को रोक कर विश्व-कल्याण–साधन की ओर प्रेरित कर मनुष्य अपना कितना भला कर सक्ता है। सद्विचार के अक्षय भंडार से उसे सबकुछ मिल सक्ता है। यही कारण था कि हमारे महर्षि सदैव शुभ चिंतन–सद्वर्तन–पर इतना जोर दे गए हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि यह शक्ति सर्वत्र प्रभाव कारी नहीं है। क्या सियार सिंह पर प्रभाव कर सक्ते हैं ? जो सदाचारी नहीं है और न जिसने भक्ति और योग के तत्वज्ञान

से अपना अस्त्र-बल बढ़ाया है ऐसे दुर्बल जन पर ही यह मारण प्रयोग फलित हो सक्ता है परंतु योग साधक तत्वाभ्यासी भक्त तत्वज्ञ या योगी पर इसका कुछ वश नहीं चलता । इस प्रयाग से त्रस्त नहीं होना चाहिए यदि किसी को भय लगता हो तो यह उसकी भ्रान्ति है । संसार में कोई भी ऐसी शक्ति नहीं है जो किसी को हानि पहुंचा सके । केवल अन्तर-भय-द्वेष-स्वार्थ को बाहर कर दो । तुम पर स्वप्न में भी कभी दुश्विचारों का प्रभाव नहींहोगा । अज्ञान का ज्ञान से, अविद्या का विद्या से और अशुभ का जय शुभ से करो । परमात्मा से सदैव प्रार्थना किया करो कि

तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु

हे परमात्मन् ! मेरे मन में सदैव शुभ संकल्प ही वास करें ।

अलौकिक चिकित्सा विज्ञान पुस्तक जो आप के संमुख प्रस्तुत हो रही है उसका यही सार है कि केवल शुभ मंगल कामना मात्र से आप अपना और मनुष्य जाति का दुःख रोग शोक मिटा कर सर्वत्र मंगल ही मंगल का प्रचार कर कितना असीम लाभ पहुंचा सक्ते हैं । इसी उद्देश्य से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है कि जनता में आध्यात्मिक चिकित्सा विज्ञान के सार्व भौमिक सिद्धांतों का प्रचार हो कर सब का भला हो ।

शुभमस्तु सर्व जगताम् ।

दुर्गाशंकर नागर

विशेष ज्ञातव्य

हम देखते हैं कि हमारे प्राचीन ऋषि महात्माओं ने ब्रह्मतेज अध्यात्म बल एवं विचार शक्ति की जो महिमा गाई है उसका महत्व अब पाश्चिमात्य अमेरिका यूरोप आदि देशों में विदित होने लगा है। वहां के लोग जोरों से अध्यात्म विद्या को बढ़ा रहे हैं। प्रार्थना के बल से असंभव को संभव करके दिखा रहे हैं। यहां हम एक संस्था का वर्णन देते हैं। जो प्रार्थना और उपासना द्वारा मनुष्यों की शारीरिक-मानसिक और आत्मिक उन्नति में सहायक हो रही है।

यूनीटी स्कूल आफ क्रिश्चानिटी कनासा सीटी (अमेरिका) जिसके संस्थापक मि० फिलमोर नामक व्यक्ति हैं, जो स्वयं जन्म से लूले लंगड़े थे और जिनके बच्चे स्त्री सब क्षय से पीड़ित थे, केवल प्रार्थना के बल पर स्वयं तथा कुटम्बियों को रोग मुक्त करके कोई ५० साल से उक्त संस्था का संचालन कर रहे हैं और खाली भगवत्प्रार्थना से श्रद्धालु पुरुषों की आधि व्याधि दरिद्रता रोग शोक मिटा कर सुख शांति मय जीवन प्रदान कर रहे हैं। उक्त संस्था में ६० मुख्य कार्य कर्ता हैं। "यूनीटी डेली वर्ल्ड" नामक मासिक पत्र १० लाख छपता है। ४००० पत्र नित्य आते हैं ६००० पार्सलें नित्य बाहर जाती हैं। 'यूनीटी' के नित्य

१००० ग्राहक होते हैं। पोस्ट लाख नोट पेपर प्रति वर्ष वापरे जाते हैं। प्रार्थना से रोग मेटने के लिये नित्य एक हजार प्रार्थना पत्र आते हैं। इस पत्र के केवल लास एंगलेस शहर में १२५०० ग्राहक हैं। यह पत्र कई भाषाओं में प्रकाशित होता है। इसका बच्चों और अन्धों के लिये अलग साहित्य निकलता है। इस संस्था के कई विभाग हैं।

(१) रोगी को बिना देखे प्रार्थना से इलाज करना (२) गरीब दिवालिये और बेरोजगारों के रोजगार के लिये प्रार्थना से सहायता दिलवाना। (३) मानसिक उन्नति स्वयोग्यता बढाने के लिये सहायता देना। (४) शारीरिक, मानसिक सामाजिक और आध्यात्मिक कठिनाइयों को प्रार्थना बल से दूर करने का प्रयत्न करना। संस्था का खर्च लोगों के प्रसन्नता या प्रीति से दिये दान से चलता है। सम्पूर्ण कार्य कर्ता मांस भोजन से परहेज करते हैं। संस्था में ४०० आदमी नित्य काम करते हैं। काम करने वालों को भी नित्य प्रति ११ बजे कुछ मिनिट के लिये काम छोड़ कर प्रार्थना करनी पड़ती है। मंगल शुक्र को दस बजे आध घंटे के लिये प्रेस का सब काम काज बन्द होकर प्रार्थना होती है। प्रेस में काम करने वालों को मासिक वेतन मिलता है। उपचारकों को कुछ भेंट के रूप में दिया जाता है।

वास्तव में सब बलों में अध्यात्म बल ही विलक्षण बल है। संसार में यदि कोई शक्ति है तो यही है। काल क्रोड़ा

के उत्थान और पतन के नियमानुकूल भारतवर्ष जो इस परा विद्या का केन्द्र था इसकी ओर से विमुख हो रहा है और यही पतन का कारण है। जगदीश्वर से प्रार्थना है कि वे हमें ऐसी शक्ति और योग्यता प्रदान करें कि हम पुनः अपनी पैत्रिक सम्पत्ति के अधिकारी बने।

दुर्गाशंकर नागर।

राज योग ग्रन्थ माला की पुस्तकें

१—प्राकृतिक आरोग्य विज्ञान कीमत ।)

इस में दुर्बल मुरदार कमजोर रोग ग्रस्त शरीर को सुदृढ़ हृष्ट पुष्ट और बलवान बनाने के सरल सुगम किंतु अचूक उपाय बतलाए हैं । पुस्तक बड़े काम की है ।

२—ध्यान से आत्म चिकित्सा —मूल्य ॥) । केवल ध्यान करने मात्र से मनुष्य स्वयं और दूसरों के रोग शोक दुःख मिटा कर, समाधि अवस्था में पहुंच कर ब्रह्मानन्द स्थिति का अनुभव कर आनंद में मस्त हो जायेगा । ध्यान करने वालों को अवश्य एक बार देखना चाहिए ।

३—सूर्य किरण चिकित्सा १॥) ।

घर में डाक्टर या वैद्य । सूर्य की किरणों से, बिना पैसे, बिना चीर फाड़, भयंकर से भयंकर व्याधियों को मेट कर रामबाण का सा तत्काल उपाय दिखाने वाले अचूक इलाज हैं । हिन्दी भाषा में इतनी बड़ी और इस विषय की पुस्तक अपने ढंग की एक ही है ।

घर बैठे बिना पैसा दवाखाना खोलकर गरीबों को जीवन दान दीजिए ।

४—प्राण-चिकित्सा मूल्य ॥)

मेस्मेरिज, हिपनाटिज और चुम्बक शक्ति द्वारा स्व-उपकार तथा लोकोपकार की क्रियाएं और साधन बतलाने वाली अपने विषय की हिन्दी भाषा में अपूर्व पुस्तक है ।

उपयोगी ग्रंथ भंडार की पुस्तकें

१- ॐकार जप विधि ।)

२- गायत्री महिमा ।)

३- आरोग्य आनंदमय जीवन बनाने के उपाय ।=)

४- सोऽहं चमत्कार ।)

५- ध्यान करने की विधि ।)

एक बार इन पुस्तकों को अवश्य मंगा कर देखिये । इन पुस्तकों के पढ़ने से ही आनन्द, उत्साह बल शरीर मन और आत्मा में संचार करते हुए मालूम होंगे ।

मिलने का पता—

राजयोग ग्रंथ माला मार्फत "कल्पवृक्ष"

कार्यालय उज्जैन (सी० आई०)

मानसिक चिकित्सा

पहिला अध्याय

पुस्तक का अभिप्राय ।

इस पुस्तक में मानसिक चिकित्सा का विविध रीतियों का क्रियात्मक वर्णन करने के हेतु सिद्धान्तो का बहुत थोड़ा विवरण किया गया है । चिकित्सक के अपना काम समझ में आने के अभिप्राय से यत्र तत्र मुख्य सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण कर दिया गया है। इससे अधिकतर पद्धतियों का ही वर्णन किया गया है ।

आरम्भ ही में यह कह देने में सार है कि इस चिकित्सा प्रणाली से कोई संप्रदाय स्थापित करने का विचार नहीं है क्योंकि सच्ची चिकित्सा का प्रभाव पूर्णरूप से प्राकृतिक नियमों पर अवलम्बित है यह शक्ति इतनी यथार्थ है जितनी कि विद्युत शक्ति । अतएव सब प्राकृतिक नियम ईश्वर निर्मित होने से मान्य और पूज्य हैं । पाश्चात्य देशों में चिकित्सा करने वालों में भिन्न २ सम्प्रदाय बना डालने की प्रवृत्ति है और प्रत्येक संप्रदाय दावा करता है कि उसकी चिकित्सा-विधि विशेष वैज्ञानिक नियमों पर अवलम्बित होने से शीघ्र अपना प्रभाव प्रकट करती है । वह यह न देखता और न मानता है कि अन्य ढंगो से काम करने वाले भी चिकित्सा करके रोगियों को आराम पहुंचाते हैं । प्राच्य देशों में इस तरह का दम्भ नहीं है । यहां मनुष्य को बाल्या-

वस्था में ज्ञान हो जाता है कि प्रकृति में नाना प्रकार की सूक्ष्म शक्तियां हैं जिनको मनुष्य अपनी सेवा में लगा कर लाभ उठा सकते हैं। उसकी दृष्टि में मानसिक किंवा विद्युत शक्ति समान रूप से रहस्यमय हैं। यथार्थ में वह इन दोनो को एक ही वस्तु के दो भिन्न स्वरूप समझता है और दोनों का मान करता है। थोड़े से ही विचार से हर कोई समझ जायगा कि यही समझ ठीक है। सब शक्ति किंवा बल प्राण की व्यक्तता है और प्राण को मन का आधार है अर्थात् विश्व के मनस्तत्व से-विराट मन से-प्राण का उदय हुआ है। इस सिद्धान्त को पूर्णतः समझने के लिये योग तत्वों का ज्ञान होना आवश्यक है।

यही कारण है कि प्राच्य देशों में मानसिक चिकित्सक ईर्षा तथा मनोमालिन्य से मुक्त रहता है। उसको विश्वास है कि हर प्रकार की सच्ची चिकित्सा में उसी बल एवं शक्ति का प्रयोग होता है जिसको कि वह काम में लाता है। वह सब चिकित्साओं का एकसा मान करता है चाहे उनकी पद्धतियां कितनी ही भिन्न रहें। स्वभावतः वह अपनी पद्धति से काम लेता है पर अन्य पुरुष को अन्य पद्धति का अनुसरण करते हुए देखकर अपमानित नहीं करता है।

इसके अतिरिक्त प्राच्य देशों के चिकित्सक को आरम्भ ही से यह सिखाया जाता है कि शरीर कुछ प्राकृतिक नियमों पर अवलम्बित है जिनका स्वास्थ्य की रक्षा तथा पुनः प्राप्ति के लिये प्रतिपालन करना आवश्यक है। उसका

विश्वास है कि जिस से स्वास्थ्य की रक्षा होती है वही बात बीमार मनुष्य को अच्छा भी कर सकती है। हमारा आशय सांस, मनोत्सर्ग, और खान पान के प्राकृतिक नियमों से है। इनका संक्षिप्त वर्णन अगले अध्याय-शरीर के प्राकृतिक नियमों में किया जायगा। चिकित्सा के काम में हाथ डालने का प्रयत्न करने के पूर्व इन प्राकृतिक नियमों को जान लेना आवश्यक है। इन नियमो की भूल से भी अवहेलना करने का प्रायश्चित भोगना पड़ता है।

हमारा विश्वास है कि यदि मनुष्य हठयोग के साधनों का अनुसरण करने लगें तो सब मनुष्य स्वस्थ रहेंगे और किसी भी प्रकार की चिकित्सा की आवश्यकता नहीं रहेगी। परन्तु सब मनुष्य एक से ज्ञानी न हैं और न हो सकते, इसी लिये चिकित्सा प्रणालियों की आवश्यकता रहेगी। मानसिक चिकित्सा ही उत्कृष्ट और उत्तम है। परन्तु जबतक रोगी रहन सहन की कुटेवों को छोड़ कर प्राकृतिक नियमो के अनुसार रहने का प्रयत्न न करे तबतक इस चिकित्सा से भी स्थायी लाभ नहीं होगा।

इसीलिये हमारा बार बार कहना है कि चिकित्सक अपने रोगी को इन नियमों से अभिज्ञ कर देवे और उपहार के समय इनका प्रति पालन करावे, जिससे अच्छा होने पर वह इस तरह रहे कि उसके स्वास्थ्य में बृद्धि हो और वह उसको स्थिर रखे न कि पुनः रोग के चुँगल में फंस जावे।

इस पुस्तक में बीमारियों का वर्णन नहीं किया जायगा। इसका हेतु तो सब की दृष्टि में स्वास्थ्य का चित्र रखना है जिससे प्रत्येक को स्वास्थ्य संपादन की रीतियों का यथेष्ट ज्ञान हो। इसी कारण इसमें रोगों के लक्षणों की भरमार नहीं की गई है क्योंकि लक्षण तो मूल कारण के संकेत हैं और हमारा तो विश्वास है कि रोग का केवल एक सर्व साधारण कारण है और वह है कोषों की अनुचित क्रिया। कोषों की ग्लानि ही सब रोग है। हठयोग के सिद्धान्तों के अनुसार साधारण उपचार करने से पीड़ा का कारण दूर हो जायगा और फिर लक्षण भी मिट जायंगे। आमों की प्रशंसा से कोई काम नहीं; उनकी महत्ता चखने से ही ध्यान में जमती है। इसी प्रकार प्रयत्न करने से ही इस चिकित्सा का महत्व ज्ञात होगा।

अपने में और अपनी चिकित्सा शक्ति में भरोसा रखो। यह दैविक देनगी सब को प्राप्त है। यह सहज शक्ति अभ्यास तथा श्रद्धा से विकसित की जा सकती है। जितना इसका प्रयोग होगा उतने ही प्रमाण से यह बढ़ेगी। जिस तरह पेशियां उपयोग में आने से दृढ होती और न आने से लुच लुची और नाजुक हो जाती है वैसे ही इसकी भी दशा है।

परन्तु जब उन्हें सफलता होने लगे या आस पास के लोग तुम्हारी चिकित्सा शक्ति को अलौकिक गुणवाली मानने लगें या तुम्हारी प्रशंसा करने लगें तब तुम गर्वित

मत हो और न ऐसा समझो कि तुमको कोई विशेष देनगी मिल गई है। ऐसा समझना मूर्खता है क्योंकि सब चिकित्सकों द्वारा वे ही प्राकृतिक शक्तियां अपना प्रभाव प्रकट कर रहीं हैं। तुमतो उनके हाथ के हथियार मात्र हो। इस तत्व को मत भूलो। दृष्टिकोण को बदल कर देखो तो यही विचार कि विश्व के नियम जो तुम्हारी पीठ पर हैं, सहायता कर रहे हैं। तुम में एक अपूर्व शक्ति उत्पन्न कर देगा।

इस पुस्तक में दी हुई सब प्रणालियों को एक बार पढलो और जो तुम्हें अत्यन्त रूचिकर हो उसे ही अपना लो, अथवा किसी से कुछ और किसी से कुछ चुनकर अपनी एक प्रणाली बना डालो। जहां पावो वहीं से अपनी रुचि के अनुसार ग्रहण करलो। किसी एक ही बात में बंध मत जाओ और उसी का बाना मत पहिनलो। बानों से सावधान रहो। अपना निजत्व मत खो बैठो। अपने आपे में रहो; स्वतन्त्र बनो।

ॐ
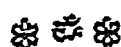
दूसरा अध्याय ।

शरीर के प्राकृतिक नियम ।

जैसा पिछले अध्याय में कहा गया है हम यह विश्वास करते हैं कि स्वास्थ्य का सच्चा रहस्य शरीर सम्बन्धी प्राकृतिक नियमो के प्रति पालन में है। इन नियमों का सार सदाचार और सुविचार है। हठयोग की पुस्तकों में इनकी स्पष्ट भावना दी हुई है। विना इन नियमों को समझे किसी भी प्रकार की चिकित्सा से कोई स्थाई लाभ नहीं होगा क्योंकि ज्योंही रोगी मनुष्य ठीक होकर अपनी पहिली कुटेवों का आलिंगन करेगा त्योंही वह उसी रुग्ण दशा को पहुंच जायगा। प्राकृतिक नियमों की अवहेलना करने में कोई भी सफल हुआ है? जिसने अवहेलना की उसी ने बड़ी बुरी तरह उलटे मुंह की खाई।

यद्यपि हठयोग की सर्व शिक्षा का यहां विवरण करना कठिन है तौभी उसका कुछ सारांश पाठकों के हेतु देदेना प्रयोजनीय है।

सौ बात की एक बात यह है कि यथोचित पोषण के विना स्वास्थ्य रहना दुर्लभ है और यथोचित पाचन-आत्मसातत्व-के विना यथोचित पोषण नहीं हो सकता। यदि यही ठीक है तो चिकित्सक का सबसे प्रथम कर्तव्य स्वाभाविक स्थिति पुनः स्थापित कर यथोचित

पाचन का निर्माण करना है। इसलिये चिकित्सक को सब रोगों के उपचार में आरंभ ही से पेट आमाशय आदि का उपचार कर स्वाभाविक दशा को पुनः स्थापित करना चाहिए। सदा आरंभ और अंत में पेट को ही साधना चाहिए क्योंकि स्वास्थ्य लाभ का आदि मर्म यही है। यथार्थ में बहुसंख्यक रोग पेट में अनपच और अपूर्ण पोषण तथा आत्म सातत्व के कारण होते हैं। कोई भी प्राणी पौधा या मनुष्य निस्सार भोजन से तथा अपूर्णतया आत्म सात किये हुए पदार्थ से हृष्ठ पुष्ठ नहीं हो सकता। अपूर्ण आत्मसातत्व से रक्त कम और दुर्बल होजाता है और फलतः प्रत्येक कोष दुर्बल और मरभूखा होजाता है। मस्तिष्क के कोपकण भी सब के साथ क्षीण होजाते हैं और शरीर के अन्य भागों में जीवन बल तथा तेज पहुँचाने में असमर्थ बन जाते हैं।

चाहे जिस पद्धति का प्रयोग करो, सदा तुम पेट का पूरा उपचार करना आरंभ करो। इसी के पीछे पड़जाओ कि वह खाये हुये भोजन को ठीक पचा कर आत्मसात करते हुए रक्त रूप कर लेवें। यही पुष्ट रक्त शरीर के अन्य भागों में पहुँच कर उन्हें स्वास्थ्य और बल प्रदान करेगा। रोगी को भी यथेष्ठ मात्रा में पुष्ठिकारक भोजन करने को जोर देकर कहो।

खाये हुए भोजन से पूरा सार खींचने का सबसे उत्तम उपाय पूरा चबाना है। पूरी रीति से चबाया हुवा भोजन पूरा पोषण देता है। अधूरे चबाये हुये भोजन का बहुत

कुछ भाग मल मूत्र के रूप में व्यर्थ चला जाता है। चिकित्सक को इसका महत्व ध्यान में रखना चाहिये। कई दुर्बल रुग्ण मनुष्यों को केवल पूरी रीति से चबा कर खाने से स्वास्थ्य लाभ हुआ है। जब तक भोजन लसलसा और पिंडाकार न होजाय तब तक उसको चबाते रहो।

अन्य महत्व की बात, जलाभिसिंचन—पानी का उचित उपयोग—है। शरीर को अपना कार्य यथोचित रीति से करने के हेतु प्रति दिन कुछ प्रमाण में पानी - तरल पदार्थ - की आवश्यकता रहती है। तरुण पुरुष के लिए चौबीस घंटो में लगभग सात आठ सेर तरल पदार्थ - पानी - आवश्यक है। यथेष्ट पानी के बिना शरीर अपना यथोचित काम नहीं कर सकता और इस कमी का भुगतान उसे करना पड़ता है। मल मूत्र और स्वेद का पूरा उत्सर्ग होने के लिये - तरल पदार्थ - पानी की आवश्यकता रहती है। अन्यथा उत्सर्ग करने वाले पिंड, पाचन, शोषण और आत्मसातत्व के हेतु रस तैयार करने में असमर्थ रहते हैं और मल-मूत्रोत्सर्ग अवयव यथा गुर्दे और आंत्र भाग पूरी तरह से न विष को त्याग सकते और न उसको शरीर के बाहर फेंक सकते हैं। यथेष्ट पानी के बिना यकृत पिंड - कलेजा - काम नहीं कर सकता। बस इसी तरह अन्य अवयव भी।

स्वास्थ्य के लिये तीसरी आवश्यकता शुद्ध श्वासोच्छ्वास है। जब तुमको मालूम हो जायगा कि जबतक रोगी शुद्ध रीति से श्वासोच्छ्वास नहीं करता, तबतक उसका रक्त पूर्णतया

शुद्ध-ओक्सीजन संपन्न - नहीं होता, तब तुम्हारी समझ में आने लगेगा कि अनुचित रीति से श्वास लेने वाले मनुष्य का स्वास्थ क्यों नहीं ठीक रह सकता। जबतक पूर्णतः समझ में न आवे तबतक गहरा श्वास लेने का अभ्यास करो और फिर अपने रोगी को भी इस कला का मर्म समझा दो।

व्यायाम, नित्य स्नान, संध्योपासनादि महत्व के कार्य हैं। चिकित्सक इन बातों की ओर रोगी का ध्यान दिलावे प्रकृति चाहती है कि प्रत्येक मनुष्य यथेष्ट नींद ले क्योंकि इसके बिना मस्तिष्क पर व्यर्थ परिश्रम का भार लद जाता है और धीरे धीरे वह विकृत होने लगता है।

सारांश, रोगी प्रकृति का जीव है अतएव जितना वह सावधान होकर प्रकृति का अनुशरण करेगा उतनाही वह भी उसको संभालेगी। प्राकृतिक नियमों का निर्माण केवल स्वास्थ्य की वृद्धि के लिये हुआ है और उनमें यदि व्यत्यय नहीं हुआ तो वे बराबर स्वाभाविक स्थिति को उत्पन्न कर सुरक्षित रखेंगे। बड़ी भारी विपत्ति तो यह है कि "आधुनिक सभ्यता" ने हमें 'प्रकृति' से इतनी दूर ला पटका है कि हमारी स्वाभाविक प्रकृतियां निकम्मी होगई हैं परिणामतः हमने उसकी आवाज को सुनना ही बन्द कर दिया है और उसने भी हताश होकर पुकारना बन्द कर दिया है।

बुद्धिमानी का उपाय तो यथा सम्भव प्रकृति के निकट तम पहुंचना ही है। जो लोग यथाशक्ति उसके नियमों का पालन करेंगे वे यथेच्छ उसके द्वारा पुरस्कृत होंगे।

सर्व जीवन महत् ज्ञानमय है और प्रत्येक प्राकृतिक नियम ईश्वरीय है अतएव वह मान्य और आचरणीय है।

रोगियों को इन नियमों, सद् जीवन और सद् विचार के ज्ञान से परिचित कर देना प्रत्येक चिकित्सक का धार्मिक कर्तव्य है। इस पुस्तक में इसका उल्लेख करने का मुख्य अभिप्राय यह है कि प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने वाले रोगी जन शीघ्र स्वाभाविक स्वास्थ्य स्थिति को प्राप्त कर जीवन सुमार्ग से व्यतीत करने लग जावें। चिकित्सक न केवल रोगों से ही संग्राम करता रहे वरन लोगों को भी उपदेश करता रहे और उनकी ज्ञानवृद्धि करे। इससे उसका धंदा पवित्र और धार्मिक होजायेगा। इस आदर्श को सदा ध्यान में रखने से चिकित्सक को अपने काम में बड़ी प्रसन्नता होगी और सफलता मिलेगी। ध्यान रखो सब मनुष्य भाई भाई हैं और तुम्हारा कर्तव्य संसार में स्वास्थ्य और शक्ति के सुसमाचार फैलाना है"। लोगों को प्रकृति माता की गोद में पुनः लौटाने का प्रयत्न करो। वे इस प्रेममय गोद से बहुत दूर भटक कर गोते खा रहे हैं।

ॐ
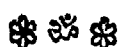
तीसरा अध्याय

प्रत्युत्पन्न मतियुत मन

(तर्क हीन क्रियाशील मन)

मन के कई भिन्न २ पटल हैं जिनमें से एक प्रत्युत्पन्न-मति पटल भी है। यह स्वतंत्रता से, हमारी इच्छा के बिना ही काम किया करता है इसकी क्रियाओं का हमको ज्ञान भी नहीं हो पाता। इसी पटल की क्रिया के आधीन शरीर की बाढ पुष्टि और भौतिक इन्द्रिय व्यापार है। इसी की आधीनता में प्रत्येक अवयव भाग और कोष शरीर में काम तथा अपना व्यापार किया करता है। यह कभी नहीं सोता वरन् नित्य अपने कर्तव्य का ध्यान रखता है; यद्यपि तर्क आदि शक्तियां नींद में लीन हो जाती हैं।

यह पटल चेतन्यता के पटल से नीचे है और नित्य सुधार स्थापन, परिवर्तन, पाचन आत्मसातत्व, मलमूत्रोत्सर्ग इत्यादि कामो का संपादन किया करता है। हमारी चैतन्यता के बिना ही शरीर का यह विचित्र कार्य इसके द्वारा किया जाता है। कोषों, कोष समूहों, ग्रंथियों अवयवों इत्यादि के बौद्धिक कार्य भी इसी के निरीक्षण में होते रहते हैं।

अगले अध्याय में कोष जीवन की विचित्र सृष्टि का वर्णन होगा। यह विचित्र सृष्टि प्रत्येक मानवी शरीर में

रहती है। उस अध्याय के पढने से तुम्हारी वहुत सी समस्याऐं हल हो जायेंगी और तुम्हें अपनी चिकित्सक शक्तियों को बुद्धि पूर्वक प्रेरणा करने की सामर्थ आजायगी ।

इस पटल की सीमा मस्तिष्क में ही समाप्त नही होती वरन् अखिल ज्ञानतन्तु प्रणाली तक और मेरुदंड स्थित शिखा तक चली गई है इसके कार्यों के मुख्य केन्द्र सौर्य पिंड-ग्रंथियां-हैं। शरीर में सूर्य तथा चन्द्र दो स्वर चलते रहते हैं। अत्यन्त महत्व की बात यह है कि यह प्रत्युत्पन्न मति का पटल चैतन्य पटल के हस्ताक्षेप से शीघ्र ही उत्तेजित होजाता है। चैतन्य पटल की सूचनाओं के अनुसार यह उत्तेजना भली या बुरी होसकती है

"सूचनाओं" के अध्याय में उदाहरणों द्वारा भली भांति प्रतिपादित किया गया है कि मनका शरीर के कार्यों पर अच्छा असर पड़ता है। चैतन्य पटल प्रत्युत्पन्न मति के पटल को सूचनाऐं देता है और वह उनके अनुसार काम करने लग जाता है। वहुत से मनुष्यों की बीमारी का कारण उनके अहित किये हुये विरुद्ध तथा हानि कारक विचार का प्रत्युत्पन्नमति पटल पर पड़ा हुवा प्रभाव ही है। इसी तरह इसके विपरीत अनुकूल और लाभदायक विचारों के प्रभाव से कई मनुष्यों ने पुनः स्वास्थ लाभ किया है। याद रहे कि बीमारी तथा स्वास्थ की स्थिति का होना पूरी तरह से स्वाभाविक क्रिया पर निर्भर है।

प्रत्युत्पन्नमति पटल अपने अधीनस्थ भागों, कोषों, अवयवों इत्यादि को सूचनाएं देकर काम में लगा दिया करता है।

इन पटलों के अस्तित्व तथा कार्य सम्बन्धी सिद्धान्तों के विवेचन में समय देना व्यर्थ है। इस पुस्तक का अभिप्राय चिकित्सा की विधियों का बिवरण देना है अतएव सिद्धान्तों का वर्णन उतनाही आवश्यक है जितना इन पद्धतियों को ठीक रीति से समझनेमें सहायक हो। मन, जीवन तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्तों के बिवरण में सिर खपाना व्यर्थ है। हमारा अभिप्राय यह है कि विद्यार्थी तथा पाठकगण इस पुस्तक के मुख्य विषय पर ध्यान जमावें।

जैसे जैसे तुम चिकित्सा की पद्धतियों का अध्ययन करते जाओगे वैसे वैसे तुम्हें प्रत्युत्पन्न मति के पटल के कार्यों का प्रभाव दृष्टिगोचर होगा।

ॐ
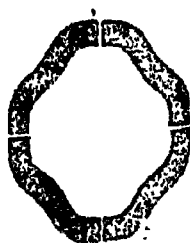
चौथा अध्याय

कोषस्थित मन और कोष समुदाय

अध्यात्मिक चिकित्सा को समझने के लिये शरीरान्तर्गत मन को समझलेना आवश्यक है। न केवल साधारण मन में पटल होते हैं वरन हर एक अवयव और हरएक कोष में पृथक मन होता है। कोषों के मनों का समुदाय अवयव स्थित मन का निर्माण करता है अर्थात् कोषों का 'मन' अवयव के मन के आधीन है और अवयव का 'मन' शरीर भर के साधारण मन के। जो लोग विषय के विवरण से अनभिज्ञ हैं उनको यह भावना विस्मयजनक हो परन्तु न केवल योगियों को वरन् आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की खोजों से परिचित मनुष्यों को भी ज्ञात है कि यह भावना यथार्थ है। अस्तु कोषगत जीवन का वर्णन किया जाता है जिससे सब कुछ समझ में आजाना सुलभ है।

योगतत्व की शिक्षा है कि यह भौतिक शरीर सूक्ष्म जीवों-कोषों-से बना हुआ है और प्रत्येक कोष को सार्वजनिक सामाजिक काम के अतिरिक्त व्यक्तिगत स्वतंत्र काम भी रहता है।

इन सूक्ष्म जीवों में कुछ अंश में स्फुटित मन रहता है। यह मन उनको अपना काम ठीक करालेने के लिये पर्याप्त है। निसन्देह इन सूक्ष्म जीवों के मन मनुष्य की प्रत्युत्पन्न मति-पटल (संस्कार-जन्य मन) के आधीन है

और शीघ्र ही उसको और 'बुद्धि' की आज्ञाओं को भी मानते हैं। इन जीवों के मन में अपने विशेष काम के लिये विचित्र योग्यता रहती है। रक्त से आवश्यक सार का शोषण और अनावश्यक का त्याग करना ही इनकी बुद्धि का प्रमाण है। पचन, आत्मसात्वत आदि की क्रियाएं प्रकट करती हैं कि कोषों में व्यक्तिगत तथा समुदायों में पिंड रूप मन रहता है। घावों का पूरना- आवश्यकतानुसार स्थान स्थान पर दौड़ पड़ना और अन्य बहुत से काम कोष गत जीवन तथा मानसिक कार्य के यथेष्ट प्रमाण हैं। शरीर शास्त्रज्ञों को इनका मर्म सुपरिचित है।

शरीर के न केवल कोमल स्नायु यथा पेशियां, झिल्लियां, मज्जा आदि वरन कठिन पदार्थ यथा हड्डियां, कुर्री, दांत आदि भी इन ही सूक्ष्म जीवों के योग से बने हुये हैं। अपने अपने विशेष कार्यों के अनुसार इनकी आकृतियां नाना प्रकार की हैं। यद्यपि प्रत्येक कोष अवयव स्थित मन के और उत्तरोत्तर प्रत्युत्पन्न-मति-पटल के आधीन है तथापि वह व्यवहारिक रीति से थोड़ी बहुत स्वतंत्र और पृथक व्यक्ति है।

सेनाके सुशिक्षित सिपाही के समान प्रत्येक कोष अपने विशिष्ट कार्य को निरन्तर किया करता है। जिस तरह युद्ध के काम में कुछ सिपाही तो रण-भूमि में जाकर काम करते और कुछ दूर सहायतार्थ बैठे रहते हैं उसी तरह शरीर में भी कुछ कोष तो काम में व्यग्र रहते हैं और कुछ अकस्मात आवश्यक काम की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। कुछ तो स्थिर

रहते हैं और कुछ घूमते हुये अपने विशेष कामों को करते हैं कुछ भंगियों का काम करते हैं। ये शरीर से मल मूत्र आदि कचरा बाहर निकाला करते हैं। कुछ पोषण रस को शरीर के सब भागों को पहुँचाया करते हैं।

जिस प्रकार सुसंगठित समाज में प्रत्येक व्यक्ति सार्वजनिक कल्याणार्थ अपना विशिष्ट काम किया करता है उसी प्रकार शरीर में प्रत्येक कोष-सूक्ष्म जीव- शरीर के स्वास्थ्य हेतु अपना उत्तरदायित्व पूरा किया करता है। शरीरान्तर्गत कोषों का बड़ा भारी समाज है। अनुमान किया जाता है कि केवल लाल रंग के कोषों की संख्या कम से कम ५५,०००,०००,०००, है। ये ही लालकोष फेफड़ों में औक्सिजन का शोषण कर धमनियों और वाहिनियों द्वारा जाकर शरीर के स्नायुओं तथा विशेष भागों को जीवन और बल प्रदान किया करते हैं। फेफड़ों को लौटते समय अपने साथ शरीर भर का दूषित अंश-कार्बन लेजाते हैं इस तरह इनका आवागमन निरंतर होता रहता है। जैसे व्यापारी लोग जहाजों को भर कर लेजाते हैं और खाली कर आते हैं और लौटती समय उस स्थान से माल भर कर आजाते हैं वैसेही इन कोषों का व्यापार भी हुआ करता है।

अन्य प्रकार के कोष पुलीस-चौकीदारी-का काम करते हैं। ये शरीर को उपद्रवी रोग बीजों के आक्रमण से बचाते रहते हैं। ये बड़े क्रूर होते हैं और बहुधा आगन्तुक को खा कर ही मिटा डालते हैं परन्तु यदि इस तरह इनका वश न चले तो दलबन्दी करके खड़े होजाते हैं और उसके आस पास

घेरा डाल कर मार धक्कों से उसे फुन्सी, फोड़ा, पीव, घाव आदि के रूप में शरीर के बाहर निकाल देते हैं।

इन कोषों की सहायता से शरीर अपनी काया पलट का काम किया करता है। शरीर का प्रत्येक भाग नित्य नवीन द्रव से सुधरता रहता है। इस सुधार मरम्मत के काम को यही कोष करत हैं। ये करोड़ों सूक्ष्म जीव निरन्तर शरीर में घूमते रहते हैं अथवा शरीर के भागों में स्थिर होकर क्षीण स्नायुओं को सुधारते रहते हैं। कमी को नवीन द्रव से पूरी करते और साथ ही साथ क्षीण और निरुपयोगी द्रव को शरीर से बाहर निकालते रहते हैं।

शरीर के प्रत्येक कोष में चाहे उसका काम कितना ही तुच्छ हो, उसके जीवन तथा जीवन कार्य के उत्तेजनार्थ आवश्यक ज्ञान रहता है। वह स्वयं भी पोषण लेता और यथेष्ट परिमाण में बढ़कर विभाजन की रीति से संख्या बढ़ाता रहता है अर्थात जब कोष पूरी बाढ कर लेता है तब स्वयं दो खण्डों में विभक्त हो जाता है। बस इसी तरह एक से दो, दो से चार, चार से आठ क्रमानुसार बढते ही जाते हैं। इसमें कभी अपवाद नहीं होता। यह प्रतीत होता है कि इस काम को करने के लिये उसमें-स्मरण शक्ति-मानसिक क्रिया रहती है। इसका अधिक विवरण करना अनावश्यक है। बस पाठकों को यही ज्ञात हो जाना चाहिए कि ये कोष 'जीवित पदार्थ' हैं और उनमें मानसिक क्रिया होती है।

इन कोषों के समुदायों से अवयव स्नायु, पेशी, इत्यादि भाग बनते हैं। ये ही मानों इनका पृथक २ समाज हैं जहां अपना व्यक्तित्व रखते हुये सम्मिलित होकर ये कोष काम करते हैं। उदाहरणार्थ कलेजे में ये करोड़ों की संख्या में हैं और सबके सब 'कालेजे के समष्टिमन' के आधीन होकर काम करते हैं। मानसिक चिकित्सा के सम्बन्ध में इस महत्व की बात को याद रखना आवश्यक है क्योंकि उसका पूरा तत्व इसी बात पर निभर है कि ये अवयव अपने मन के द्वारा समष्टि मन के दबाव तथा आदेश के अनुसार काम करते हैं।

प्रत्येक कोष समुदाय के प्रत्येक समुदाय महत्तर समूह के आधीन हैं। इसतरह उतरोत्तर सब प्रत्युत्पन्न मति पटल के आधीन है। अखिल कोष समाज का मन सम्मिलित होकर विराट मन की अध्यक्षता में काम करता है। कोषों की पूरी मानसिक योजना बड़ी चमत्कारिक और विस्मय जनक है।

इन कोष समाजों का शासन करना प्रत्युत्पन्न मति पटल का कर्तव्य है और वह बहुधा अपना काम भलीभांति करता है, यदि 'बुद्धि' का हस्तक्षेप न हो। यह बुद्धि कभी कभी भय के विचारों का संचार कर देती है और कोष समाजों को व्यभिचारी बना देती है। दुर्बुद्धि (कुमति) शरीर की नियत व्यवस्था में हस्ताक्षेप करने को उद्यत रहती है और विचित्र प्रभावों या कुटेवों की प्रेरणा से कोष समाजों को व्यभिचारी बना कर अपने अपने स्थानों में व्यवस्था भंग करने को क्षुब्ध कर देती है।

कभी कभी काम अधिक बढ जाने से तथा इस समान अन्य कारणों से कोप समाजों में विद्रोह (अराजकता) फैल जाता है। कभी कभी ऐसा प्रतीत होता है कि छोटे मोटे सब समाजों ने हड़ताल (स्ट्राइक) कर दी है। असाधारण, अनुचित, या अधिक काम लद जाने से अथवा यथेष्ट पोषण के अभाव से वे क्षुब्ध हो उठती हैं। ये कोप ठीक उसी तरह व्यवहार करते हैं जिस तरह मनुष्य ऐसी दशा में करता है। यह उपमा बहुधा नव शिक्षितों को विस्मय जनक ज्ञात होती है।

यदि निपटारा न हुवा तो यह विद्रोह विस्तृत होता जाता है। निपटारा हो जाने पर भी ये कोष मंद चाल से काम पर लगते हैं और उत्तम रीति से काम करने के बदले यथा संभव अपनी इच्छानुसार थोड़ा काम करते हैं। समुचित पोषण और संयम से स्वाभाविक स्थिति के उत्पन्न होने पर वे ठीक ठीक काम करने को धीरे धीरे लग जायंगे। कोष समूहों को शीघ्र भेजे हुए 'इच्छा' के आदेशों से यह व्यवस्था तुरन्त स्थापित की जा सकती है। इस तरह से शाशन और प्रबन्ध का पुनः स्थापित होजाना विस्मय जनक है।

विज्ञान ने हमें प्राचीन योगियों की शिक्षा में तथ्यांश बतला दिया है कि सब रोग कोप की रुग्णता से होते हैं और यदि हम इस विपति का दमन कर सकें तो हम पूरी समस्या को हल कर सकेंगे। यह दमन शक्ति कई रीतियों से प्राप्त हो सकती है और इस पुस्तक का मुख्य विषय इन रीतियों को और उनके प्रयोग पद्धितियों को समझाना है।

❀ ॐ ❀
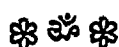
पाँचवाँ अध्याय

मानसिक चिकित्सा के तीन रूप।

पिछले अध्याय में कहा जा चुका है कि शारीरिक रोग प्रकट करने वाले कोषों का दमन कई रीतियों से किया जासकता है। इनका विचार निम्न लिखित तीन रूपों में किया जाता है, यथा —

(१) प्राण मय चिकित्सा अर्थात् रुग्णभाग में प्राण या जीव शक्ति प्रेरित कर कोषों में और स्नायु में स्वांभाविक स्फूर्ति उत्पन्न करना है। इससे निस्सार द्रव शरीर के बाहर निकल जाता है और स्वाभाविक स्थिति उत्पन्न होजाती है। पाश्चात्य देशों में इसी रीति का नाम 'चुँवक चिकित्सा' इत्यादि है और इसी के कारण बहुतों को आराम पहुंचाया गया है। यद्यपि बहुत से चिकित्सकों को इस काम के मुख्य तत्वों का ज्ञान ही नहीं है तथापि उन्होंने प्रयोजनीय पद्धतियों का बहुत अच्छा व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करलिया है।

(२) मनोमय चिकित्सा का आशय कोष स्थित मन का एकदम या रोगी के प्रत्युत्पन्न मति पटल के द्वारा दमन करना है। इसमें उन सबका समावेश है जो पाश्चात्य देशों में उपस्थित या अनुपस्थित मनोमय सूचनामय मनोविज्ञानमय इत्यादि नामों से प्रख्यात हैं। चिकित्सा को नाम मात्र की धार्मिक रीतियां भी धार्मिक शिक्षा और सिद्धान्तों के छद्म वेष में मनोमय चिकित्सा के ही रूप हैं।

(३) अध्यात्मिक चिकित्सा सर्वोत्कृष्ट रीति है। ऊंची श्रेणी का आध्यात्मिक ज्ञान रखने वाला चिकित्सक अपने उच्चतर मन का प्रकाश रोगी के मन पर डालता है और उसे इस उच्चतर विचार तरंग में मग्न कर थोड़े काल के लिए उच्चतर पटल पर उठाके बैठा देता है। यह पद्धति इतनी सामान्य नहीं जितनी कि किंवदंतियों को सुनकर लोगों का विश्वास जम गया है। यह यथार्थ में कचित पुरुष को ही सिद्ध होती है। इसके हेतु ऊंचे संयम की आवश्यकता है। इसका दंभ करने वाले बहुत से हैं। पर वे सब साधारण मनोमय चिकित्सा की पद्धतियों का प्रयोग करते और यथार्थ अध्यात्मिक चिकित्सा की भावना से निपट अनभिज्ञ हैं। यदि इन दांभिकों की चेष्टा से सुपरिणाम होते हैं तो कुछ हानि नहीं है। यहां स्पष्ट बात लिख देने का अभिप्राय पाठकों को विषय की शुद्ध भावना करा देना है। इन तीनों रीतियों का क्रमानुसार वर्णन आगे किया जायगा।

इस सम्बन्ध में मुख्य बात याद रखने की यह है कि मनोवैज्ञानिक चिकित्सा की सब रीतियां यथार्थ में 'मनोमय' चिकित्सा है क्योंकि मन से ही प्राण सरकते हैं। और यथार्थ में वे स्वयं मन की ही शक्ति हैं। आधि या व्याधि भौतिक कहलाती हैं अर्थात वह भौतिक शरीर के कोषों में प्रकट होती है और यदि हम बारीकी से जांच करें तो हम देखेंगे कि यह वास्तव में रुग्ण कोषों की व्यथा है। परिणामतः अनामय करने की मुख्य रीति कोष के मन की 'तह' को पहुँचकर स्वाभाविक स्फूर्ति

उत्पन्न कर देना है। यह कई रीतियां से हो सकता है पर सब की सब निदान 'मनोमय' हैं क्योंकि अनामय होने का मूल कारण रीति नहीं परन्तु रीति द्वारा स्फूर्जित मन है। ये सब बातें आगे स्पष्ट हो जायंगी।

अगले अध्याय में 'प्राण मय' चिकित्सा पद्धति का वर्णन होगा।

❀ ॐ ❀

छठवां अध्याय

प्राणमय चिकित्सा के सिद्धान्त

इस चिकित्सा को समझने के पहिले प्राण के विषय का कुछ ज्ञान होना आवश्यक है। भूत मात्र के शरीर में रहने वाली 'जीवन-शक्ति'- चैतन्य-बल- का नाम योगतत्वज्ञों ने प्राण रखा है। निदान, प्राण भी अपने स्वरूप में मानसिक ही है और विश्व के 'मन' को ही शक्ति है। इन सिद्धान्तो के पचड़े में न पड़ कर सीधी बात यही जान लेना बस है कि मन और जड़ द्रव के समान प्राण भी स्वतन्त्र पदार्थ है।

योगियों की शिक्षा है कि प्राण एक विश्वतन्त्र है जो सब जगह व्याप्त है और मन तथा जड़ पदार्थ मिल कर 'केवलता के परम तत्व' को तीन रूपों में व्यक्त करता है। विद्युत, तेज, प्रकाश इत्यादि रूपों में प्राण की व्यक्तता को छोड़ कर 'जीवन-शक्ति' के रूप में व्यक्तता का विचार किया जावेगा, क्योंकि, इस पुस्तक का सम्बन्ध केवल इसी रूप की व्यक्तता से है। प्राण के ही बल से शारीरिक चैतन्यता, सर्व प्रकार की हलचल और सब क्रियायें चलती हैं। जीवन के सब लक्षण इसी से प्रकट होते हैं।

सारांश, प्राण जीवन का वह तत्व है जो वायु, पानी, भोजन इत्यादि में पाया जाता है। इन्हीं से जीवित अवयव शारीरिक क्रियार्थ इसको चूस कर आत्मसात कर लेते हैं। 'प्राण' विषय को अच्छी तरह से समझने के लिये श्वासो

च्छ्वास का ज्ञान होना चाहिए। इसके ज्ञान में 'प्राण' का प्राप्त करने, संचय करने और उचित प्रयुक्त करने की विधि आजाती है।

प्राण चिकित्सा का साधारण सिद्धान्त यह है कि 'प्राण' का परस्पर विनिमय बहुतसी रीतियों से हो सकता है। साधारण तथा अत्यन्त प्रभाव युक्त, पद्धति रोगी मनुष्य पर 'हाथों का फेरना' और साथ साथ 'प्राण' को बाधक भाग की ओर प्रेषित करना है। इससे सुस्त पड़े हुए कोष-समुदाय उत्तेजित हो कर काम करने में प्रवृत्त हो जाते हैं। इस तरह प्रेषित 'प्राण' रोगी पर बल पद औषधि का काम करते और उसको आश्चर्य जनक उत्तेजना तथा बल प्रदान करते हैं। साथ ही साथ वे रुग्ण अवयव का भी सुधार कर देते हैं।

चिकित्सक के मन से प्रेषित शक्तिसम्पन्न विचार के रूपमें भी 'प्राण' रोगी तक पहुंचाये जा सकते हैं। साधारणतः इस विषय की पुस्तकों में इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु अगले अध्याय में प्राणचिकित्सा के विचार पर अधिक ध्यान दिया जायगा। वास्तव में केवल इन्हीं पद्धतियों के प्रयोग से अद्भुत चिकित्सा हो सकती है। चाहे चिकित्सा की अन्य प्रणालियों का कुछ भी योग न किया जावे।

सिद्धान्तों के तर्क में पड़ कर समय खोने से कुछ लाभ नहीं है। इस पुस्तक में व्यवहारिक यथार्थ बातों का विवरण होगा।

'हाथ फेर कर' रोगी की पीड़ा को दूर करने की विधि लोगों को इतिहासातीत काल से सुपरिचित है। प्राचीन ग्रन्थों के परिशीलन से इसको जानना कठिन नहीं। बहुत प्राचीन काल में इसी विधि का प्रचार था। यही आज कल भी बहुत से लोगों में है। अस्पृश्य जातियें तक में भी इसी का प्रचार है। मनुष्य के मन में संस्कार जन्य बुद्धि से यह प्रेरणा हुई कि चिकित्सा इस दिशा में होती है।

प्राचीन काल के भारतवासी, मिश्र देश वासी, यहूदी और चीनी चिकित्सा की इस पद्धति से पूर्ण परिचित थे। मिश्र देश में प्राचीन शिला लेख चित्रों में रोगियों के पेट पर एक हाथ और पीठ पर दूसरा हाथ धरे हुये चिकित्सक दर्शाये गये हैं। चीन के प्राचीन खोजी भी कहते हैं कि इसी के समान पद्धतियां वहां भी सर्व साधारण थीं।

'पुरानी इंजील' में इस पद्धति के उदाहरणों की भरमार है। 'नवीन इंजील' में भी इसके उदाहरण पाये जाते हैं। किम्वदन्ति है कि साधु पीट्रिक ने आयरलैंड में आंखों पर हाथ रखकर अन्धे को अच्छा कर दिया था। जनवाद है कि साधु बर्नार्ड ने भी एक ही दिन में ११ अन्धों को और १८ लूलों को अच्छा कर दिया था और कलोन गांव में १२ लूलों को, ३ गूंगों को और दस बहिरों को ठीक किया और यह सब केवल हाथ फिरा कर। प्राचीन ईसाई धर्म का इतिहास ऐसी घटनाओं के उदाहरणों से भरा पड़ा है। यदि काल्पनिक कथाओं का मान न भी करें तो हमें यह दीख पड़ेगा कि इस तरह से उन लोगों ने बहुत कुछ प्रभाव-युक्त काम किया। लोकोक्ति

है कि इपीरस का राजा पिह्नस लोगों को छूकर उनकी अतड़ियों तथा तिल्ली के रोगों को दूर किया करता था। व्हेस्पेसियन का बादशाह हाथ फिरा कर शिर पीड़ा, पंगुता, अंधता इत्यादि कष्ट दूर कर देता था। हेड्रियन अपस्मार के रोगियो को अंगुलियों के स्पर्श ही से चंगा करता था। ओफल राजा रोगी पर हाथ फेरते ही उसे तुरंत अच्छा कर देता था। प्राचीन काल में इंगलैन्ड और फ्रांस के राजा 'राज स्पर्श' से कंठमाल समान गले के रोगों को दूर करते थे। इंगलैन्ड में 'राज-शूक' नामक एक रोग था जो राजा के स्पर्श से ही दूर होता था।

हेप्सवर्ग के दरबारी तुतले पन को चुँबन से दूर करने में विश्वास रखते थे। प्लिनी का कथन है कि प्राचीन समय में कुछ लोग छू कर ही सर्प-दंश का पीड़ा हटा देते थे। अनेक धार्मिक प्रख्यात पुरुषों ने हाथ फेर कर ही रोगों को हटाया।

इंगलैन्ड में 'ग्रेड रेक' इसी पद्धति से प्रायः सब प्रकार के रोगों को दूर करता फिरता था। उसकी सफलता को देख कर लोग उसे दांभिक समझने लगे और त्रास देने लगे। जो केवल राजा के स्पर्श ही से ठीक होते थे उन रोगों को भी इसके द्वारा दूर किये जाते देख लोगों ने उसे राज्यपद के लिये पाखण्डो समझा। सत्रहवीं शदी में एक माली लेन्हर्ट ने लन्दन की गलियों में व्यथित अवयवों को अंगुलियों से छूकर अद्भुत चिकित्सा शक्ति दिखलाई। सन् १८१७ ई० में सिलिसिया में रिचर नाम के

चौकीदार ने हाथ से ही छूकर हजारों मनुष्यों के रोग दूर किये।

सब समय सब लोगों में प्राण चिकित्सा का प्रचार रहा है और जिन लोगों में आराम पहुँचाने का यथेष्ट आत्म विश्वास था वे विशेष देनगी युक्त माने जाते थे। पर यथार्थ बात यह है कि यह 'देनगी' तो मनुष्य मात्र को सामान्य है और जिसमें इसके प्रयत्न करने का 'आत्म विश्वास' है और जो इस काम में हार्दिक उत्साह रखता हो वह इस शक्ति को प्रकट कर दिखा सकता है। पच्चीस वर्षा पूर्व के योगेश्वरों ने इस चिकित्सा को विज्ञान का रूप दिया और उनके ज्ञान की ज्योति का सर्व संसार में प्रसार हुआ। मिश्र देश वासियों ने बड़े योगेश्वरों से ही ज्ञान प्राप्त किया और अपने यहां शालायें स्थापित कीं। इसी तरह यूनानियों ने मिश्र और भारत में ज्ञान पाया। लोगों का विश्वास है कि यहूदियों और असिरियों ने मिश्र के लोगों द्वारा ज्ञान प्राप्त किया। प्राचीन यूनानी वैद्य भी मुख्यतः सारे शरीर पर या रुग्ण अवयवों पर हाथ फेर कर ही आराम किया करते थे। ये लोग चिकित्सा पद्धति को पुरोहितों का पंजा मानते थे और सर्व साधारण जनता को इसके रहस्य के ज्ञान का पता तक न देते थे। हिपोक्रेट लिखता है कि शरीर द्वारा सहन किये हुये दुखों को आत्मा बंद आंखों से भली भांति देखता है। प्राचीन काल में निपुण वैद्य जानते थे कि शरीर पर हाथ के थोड़े ही रगड़ने से रक्त को कितना

लाभ होता है। बहुत से अनुभवी डाक्टरों का विश्वास है कि हाथ से निकली हुई गर्मी रोगी को बहुत कुछ लाभ और शांतिप्रद होती है। यह उपचार अचानक तथा दीर्घकालिक पीड़ा और नानाविध दुर्बलता पर लागू होता है। इसमें प्रफुल्लित करने तथा बल लाने वाले दोनो प्रकार के असर होते हैं। यह बहुधा देखा गया है कि मा ो चिकित्सक के हाथ में रुग्ण अवयवों से पीड़ा तथा अनेक दोषों को सोख लेने का विचित्र गुण है। उसको रुग्ण अवयवों की ओर अंगुलियां फैलाने और उन पर हाथ रखने की देरी है कि पीड़ा और दोष दूर हुए। कुछ विद्वानों का कहना है कि जिस तरह बीमारियां संक्रमण से एक दूसरे को पहुँचती हैं उसी तरह स्पर्श और कुछ हाव भाव से रोगी में स्वास्थ्य का अंकुर उत्पन्न किया जा सकता है।

इस्कुलेपियस रुग्ण अवयवों पर श्वास छोड़ कर और अपने हाथों से थपकियां मार कर रोगों की चिकित्सा करता रहा। इंगलैन्ड में ड्रूइड नाम के प्राचीन पुजारी भी इसी से आराम पहुँचाते रहे। उन्होंने इसको अपनी धार्मिक कृतियों और विधियों का अङ्ग बना डाला। टेसिटस, ह्रापिसकस और लम्प्रीडियस प्रभृति मनुष्यों ने ड्रूइडों के विषय में ऐसी बातें लिखी हैं और उनकी देनगेयों के सम्बन्ध में आश्चर्य जनक साक्षी दी है।

मध्य युग का साहित्य हाथ फिराकर आराम करने के आश्चर्य जनक वर्णनों से भरा पड़ा है। गिरजाघर ही प्रायः इन बातों के दृश्य होते थे। ह्रानहेमंट भी, जो उन-

१६वीं सदी के पूर्व भाग में था, प्राण चिकित्सा के सिद्धान्तों का ज्ञाता प्रतीत होता है क्योंकि वह लिखता है कि चुम्बक शक्ति सर्वत्र काम कर रही है। उसमें नाम के सिवाय कुछ भी नवीनता नहीं है। यह केवल उन लोगों के लिये दंभिक कथन हो जो प्रत्येक बात की निन्दा करते और जिन बातों को समझ नहीं सकते उन्हें शैतान की शक्ति का प्रभाव बतलाते हैं।

उसी समय में मेक्सवेल नामक स्काटलैंड के निवासी ने इसी समान चिकित्सा की रीतियां सिखलाई। उसका विश्वव्यापी जीवन तत्व में विश्वास जमा हुआ था। इस तत्व को रोगों को आराम करने के हेतु मनुष्य आकर्षित कर सकता है। सन १७३४ ईसवी में हेहेल नाम के पुजारी ने एक विश्वव्यापी द्रव का अस्तित्व समझाया। इसका उपयोग भी रोगों को आराम पहुचाने में हो सकता है। उसने कई आश्चर्य जनक आराम किये परन्तु कर्ण पिशाच सिद्ध होने और जादू का उपयोग करने के कारण गिरजा घर से बाहर निकाल दिया गया। मेस्मर ने प्राणी चुँवक का सिद्धान्त बतलाया और सदा अपने हाथों का उपयोग कर उसकी सहायता से कई लोगों को आराम पहुचाया। मेस्मर के बहुत से अनुयायी और शिष्य हुए। इनमें से बहुतों ने बड़ा नाम कमाया। मार्किस भी इनमें से एक था।

जर्मनी में मेस्मर के सिद्धान्तों का और उस के अनुयायियों का लोगों में बड़ा मान हुआ। ब्रिमेन नगर इस सिद्धान्त का एक बड़ा केन्द्र था और यहीं से वह

जर्मनी भर में फैला। प्रसिया की सरकार ने इसमें बड़ा कार्य भाग लिया और 'चुम्बक' पद्धति से रोगों के उपचार के लिये एक चिकित्सालय स्थापित कर दिया। बहुत से देशों की सरकारों ने भी इस पद्धति को वैद्यों के हाथ में रखने के लिये कठोर नियम बना दिये। इस तरह देश देश में ये नवीन सिद्धान्त फैल गये। बहुधा सरकारी बाधा उपस्थित रही और तत्कालीन वैद्य समाज विरोध करता रहा तौभी यह पद्धति भिन्न भिन्न रूपों में और सिद्धान्तों के अनुसार अभीतक फूलती फलती है। गत वर्षों से 'नवीन विचार' के आन्दोलन की भयंकर बाढ़ और 'चुम्बक पद्धति' के नानाविध अनुयायियों के कारण अमेरिका और ग्रेट ब्रिटन में इस को बड़ा यश प्राप्त हुआ है। साधारण तथा धार्मिक भावनाओं में इसी के उपलक्ष्य में बहुत से सिद्धान्त निकल आये हैं। परन्तु इनके रहने पर भी काम चलता रहा और बहुत से रोगियों को आराम होता गया। भिन्न पद्धतियां और सिद्धान्त रहने पर भी प्रायः इन सब चिकित्साओं में मुख्य काम 'हाथ फिराना' ही रहा।

बहुत से लोगों का अभी भी विश्वास है कि यह एक विशिष्ट देनगी परंपरा से विशेष व्यक्तियों में है। परन्तु यह बात नहीं है, क्योंकि, आराम पहुँचाने की देनगी प्रत्येक मनुष्य में है किन्तु कोई कोई अन्य जनों की अपेक्षा कार्यार्थ अपनी विशेष स्वाभाविक योग्यता के कारण अधिक प्रवीणता प्राप्त कर लेते हैं। चाहें तो सब मनुष्य इस 'देनगी' को अभ्यास द्वारा विकसित कर सकते हैं।

'हाथ फिरा कर' 'चिकित्सा करने की सब पद्धति या 'प्राण चिकित्सा' के अन्तर्गत है। इस विषय सम्बन्धी मुख्य बातों का संक्षिप्त वर्णन कर देना आवश्यक है।

सबसे भली रीति 'प्राण' का आशय जान लेना है। 'प्राण' अथवा 'जीवन बल' दोनों पर्यायवाची -'एक अर्थी'- हैं।

शरीर के सब कार्यों में इसी बल का प्रयोग रहता है। प्राण ही से रक्त संचार, कोष कणों की गति, और शरीर की सारी हलचल होती है। इस के बिना न जीवन, न गति और न कोई कार्य है। कोई इसे 'ज्ञान रज्जुओं' की शक्ति कहते हैं। कुछ भी नाम लो सबका एक ही अर्थ है। यही बल है जो पेशियों की गति करने के लिये इच्छा के प्रयत्न द्वारा 'ज्ञान-रज्जु प्रणाली' से प्रसारित होता है और पेशियों में वांछित गति उत्पन्न कर देता है।

इस बल के तत्व और यथार्थता का विवरण करना आवश्यक नहीं है क्योंकि इससे कोरा विषयान्तर ही होगा इतना ही बस है कि उसका अस्तित्व यथार्थ में है और रोगों की चिकित्सा में उपयोग हो सकता है। बहुत से विद्युत् शास्त्रज्ञ भी विद्युत के यथार्थ रूप को नहीं जानते तौभी वे उसका अद्भुत उपयोग कर सकते और उसके कार्यों के नियमों को समझ सकते हैं। और यही हाल 'जीवन बल' प्राण का भी है क्योंकि इसके मूल और यथार्थ रूप को समझने के लिये विश्व के मल और स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है। परन्तु मनुष्य जीवन के

प्रति क्षण में इसका उपयोग करता है और रोगी की चिकित्सा में भी इसका प्रयोग कर सकता है।

'मनुष्य अपने खाये हुये भोजन को, पिये हुये पानी को और श्वास द्वारा ली हुई वायु को आत्मसात करके 'प्राण' प्राप्त करता है। उसके पास शक्ति का एक मानसिक मूल है। जिसके द्वारा वह विश्व मन के शक्ति-भंडार से अपने लिये शक्ति खींचता रहता है। यह जीवन शक्ति-प्राण-मस्तिष्क में जमा रहती है और सारे शरीर की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये यहीं से फैलती है। यह शरीर के सब भागों की ज्ञान रज्जु प्रणाली में विभाजित है। वस्तुतः प्रत्येक ज्ञान रज्जु निरंतर प्राण से युक्त रहती है अर्थात ज्यों ही वह खाली होती है त्यों ही मर जाती है। प्रत्येक ज्ञान रज्जु 'जीवन का तार' है जिसके द्वारा प्राण चलता रहता है। इसके सिवाय शरीर का प्रत्येक कोष कण, चाहे वह कहीं भी हो वा कुछ भी काम करता हो, सर्वदा प्राण संपन्न रहता है।

सबल सस्वास्थ्य मनुष्य वही है जिसका शरीर 'प्राण'-जीवन-बल से यथेष्ठ संपन्न है और वह 'प्राण' सब भागों में पहुंच कर प्रसन्नता, प्रफुल्लता, चैतन्यता और बल प्रदान करता है। यह इतना ही नहीं करता वरन् उसके शरीर को तेजोवलय से प्रदीप्त कर देता है। उसके समीप आने वाले सब लोग इस तेजोवलय को देख सकते हैं। प्राण से रिक्त-हीन मनुष्य दुर्बल और शक्ति-हीन दीखेगा और जीवन के भंडार की कमी को पूरी करने पर ही अपनी स्वाभाविक दशा पुनः प्राप्त करेगा।

साधारण वैद्य 'प्राण' के अस्तित्व में तो विश्वास करते हैं परन्तु इसके सम्बन्ध में भिन्न सिद्धान्त रखते हैं। उनका यही आग्रह है कि ये मनुष्य की ज्ञान रज्जु प्रणाली की सीमा के परे स्थानान्तरित नहीं हो सकते। परन्तु इसके विरुद्ध सहस्रों मनुष्यों का यह अनुभव है कि 'प्राण' अन्य मनुष्यों के शरीर में स्थानान्तरित हुए और हो सकते हैं जिससे उसमें बल और उत्साह आ जाते हैं।

इस पद्धति की चिकित्सा के बहुत से अभ्यास करने वालों ने इसे चुँबक चिकित्सा आदि कह कर गड़बड़ उपस्थित कर दी है। 'प्राण' के सम्बन्ध में कोई चुँबक नहीं है क्यों कि इसकी उत्पति का कुछ भिन्न ही कारण है। यथार्थ में शक्ति के सब रूपों का मूल कारण एक ही है। प्रकृति में 'प्राण' और 'चुंबक' का कार्य भाग अलग अलग है। प्राण सबसे निराला है और अनुपम है अर्थात् उसके समान नहीं है।

सब मनुष्यों में थोड़ा बहुत 'जीवन बल' रहता ही है और उसके भंडार को बढ़ाने की तथा दूसरों को प्रेरित कर रोग दूर करने की शक्ति भी रहती है अर्थात् सब मनुष्यों में चिकित्सा करने की गुप्त शक्ति रहती है। लोग बहुधा कुछ ही जनों को ऐसी देनगी से संपन्न समझते हैं परन्तु यथार्थ में सब मनुष्य श्रद्धा और अभ्यास से इस देनगी का विकास कर सकते हैं। इस पुस्तक का यही उद्देश्य है।

प्राण चिकित्सा का सिद्धान्त रुग्ण भाग के कोषकणों को पूरा और ताजे प्राण से भर देना है जिससे उनमें क्रिया

करने की स्वाभाविक शक्ति आजाती है। परिणाम यह होता है कि जब कोष-कण ठीक ठीक काम करने लग जाते हैं तब अवयव भी अपनी पहिली चैतन्यता प्राप्त करलेता है और सारा भाग-शरीर पुनः स्वास्थ्य प्राप्त करलेता है निदान स्वास्थ्य ही केवल स्वाभाविक क्रिया है।

卐 ॐ 卐
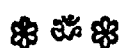
सातवां अध्याय।

प्राण चिकित्सा का अभ्यास

चिकित्सा में हाथों का उपयोग स्वाभाविक प्रवृति का परिणाम प्रतीत होता है। जब बालक चोट खाकर रोता हुआ मां के पास जाता है तब वह स्वभावतः उसके अङ्ग पर हाथ फेरती है और बालक को मां के हाथ के प्रेममय स्पर्श से आनन्द और समाधान हो जाता है। बहुधा देखा गया है कि मातायें बच्चों को पुचकार देती और कह देती हैं कि खेलो अब चोट अच्छी होगई; हमने हाथ फिरा कर अच्छा कर दिया। बालक भी रोना बन्द कर खेलने लग जाता है।

यदि हमें कुछ चोट लग जाती है तो स्वभावतः हम उस अङ्ग पर हाथ फेरते और उससे कुछ आराम पाते हैं। सिर पीड़ा साधारणतः हाथ से दबाने से ही दूर होती और दाई के हाथ का स्पर्श ही रोगी को आराम देता है। ये ही साधारण हलचल जो प्रकृति जन्य हैं, प्राण चिकित्सा के अभ्यास के मुख्य आधार हैं। यह पद्धति इतनी सरल है कि जिसको सिखलाने की कुछ आवश्यकता ही नहीं। जिन लोगों ने इस चिकित्सा में निपुणता प्राप्त की है उनकी उत्तम पद्धतियों का वर्णन यहां पर किया जायगा। उनपर ध्यान देने से तुम भी इसमें दक्ष हो जाओगे।

चिकित्सा करने में जीवनवल- प्राण- पहुचाने को मुख्य साधन टकटकी बांधना अर्थात नेत्र; झाड़ना अर्थात हाथ, और फूकना अर्थात श्वास हैं। ये सब प्रभाव शाली है। यदि चाहो तो सब का एक साथ प्रयोग कर सकते हो।

प्राण का पहुचाना वहुत कुछ मानसिक भाव है और नेत्र ही मानसिक भाव को प्रकट करने के विख्यात अङ्ग हैं। अतएव प्राण पहुंचाने में इन्हीं का उपयोग लाभदायक है। चिकित्सा करने में रुग्ण अङ्ग को झाड़ते समय यदि चिकित्सक उस पर दृष्टि जमावे तो उसका प्रभाव और भी बढ जायगा और ऐसा करने से उसका मन एकाग्र हो कर उसकी इच्छाशक्ति उस अङ्ग पर जम जायगी। रुग्ण कोषकण-सूक्ष्मजीव भी अपना काम यथोचित करने को शक्तिलाभ करेंगे।

कई चिकित्सक वहुधा रुग्ण भागों पर फूँक मारते हैं, जिससे उन पर उनके गर्म श्वास का अद्भुत प्रभाव होता है। कभी कभी कोई लोग कोमल ऊनी कपड़े का टुकड़ा रुग्ण भाग पर रख देते हैं। यह टुकड़ा शीघ्र गरम होकर देर तक गर्म रह कर आराम पहुँचाताहै।

इस चिकित्सा में 'जीवन-वल' पहुँचाने की मुख्य रीति हाथों का प्रयोग है।

हाथों को दूर रखो। अंगुलियां फैली हुई अलग रहें। यदि तुम्हारा मरीज वैठा हो तो तुम अपना हाथ उसके सिर पर उठाओ और धीरे धीरे झाड़ते हुए उसके घुटनों

तक लेजाओ। जब एक बार पूरा होजावे तब अंगुलियों को अलग एक बाजू झटकारो मानो कि तुम उन्हें धोकर पानी झटकार रहे हो, और पुनः अंगुलियां मिला कर हथेलियों को मरीज की बाजू रखते हुए ऊपर की ओर हाथ लेजाओ जब उसके शरीर से ऊपर हाथ पहुंच जावें तब पुनः वैसाही अंगुलियां फैला कर हाथ फेरो जैसा कि पहिले किया था।

अपनी अंगुलियों के छोरों से निकले हुए 'जीवन बल' की धारा से तुम उसे स्नान करा रहे हो। यह भावना रखने से तुम शीघ्र शक्ति-मय गति प्राप्त कर लोगे। नीचे की ओर हाथ लेजाने से मरीज को आराम मालूम होता और ऊपर लेजाने से उसमें चैतन्यता और स्फूर्ति आती है।

स्नान कराने की भावना से अंगुलियां फैली हुई रख के हाथ सदैव नीचे की ओर लेजाओ, चाहे सिर, छाती, हाथ, पांव और अन्य भाग रुग्ण दशा में हों, परन्तु ऊपर की ओर सदा अंगुलियां मिला कर मरीज की बाजुओं से हाथ उठाये जावें। हथेलियां मरीज की ओर रहें। चिकित्सक अपने हाथ मनमाने दूर रख सकता है। इसके लिये कोई विशिष्ट दूरी की आवश्यकता नहीं। अभ्यास करने से वह स्वयं इसका निश्चय कर सकता है। यद्यपि, साधारणतः शरीर से तीन चार इंच दूर रख कर धीरे धीरे हाथ फेरने से मरीज को समाधान,संतोष और आराम पहुँचता है तथापि एक फुट दूर रख कर शीघ्रता से हाथ फेरने में मरीज उत्तेजित होता और उसके रुग्ण भागों में विशेष स्फूर्ति और शक्ति आती है। दो फुट दूर रख कर हाथ अधिक शीघ्रता और

तीव्रता से फेरने में और भी उत्तेजना होती है। इस युक्ति से रक्त संचार तीव्रता से गति शील होता और मंद अवयव चैतन्य होजाते हैं।

लम्ब रीति से हाथ फेरने के सिवाय आड़ी रीति से भी हाथ फेरा जाता है। इस आड़ी रीति में हथेलियां बाजू से और बाहर की ओर रहती हैं। कलाईयों को विचित्र रीति से झुकाना पड़ता है। यह सब काम अभ्यास से सुगम हो जाता है। जब हाथ ठीक स्थिति में आजाय तब शरीर या अवयव के सामने बाजू से झाड़ते हुये ले जाओ और पीछे लाते समय हथेलियों को घुमा दो अर्थात् विपरीत होने के बदले वे अब परस्पर सम्मुख रहें। इस युक्ति से सूजे हुए या कड़े पड़े हुए अवयव ढीले पड़ जाते हैं। नियमतः लम्ब रीति से हाथ फेरने के पूर्व बहुधा इस युक्ति से काम लेना भला होता है।

किसी समय 'हथेली प्रदर्शन' से बहुमूल्य उपचार हो जाता है। इसमें हथेली रुग्ण भाग के सामने छ इंच या और भी निकट कुछ रक्खी जाती है। यह बहुधा एक ही हाथ से की जाती है। इसका प्रभाव उत्तेजक और बलप्रद होता है।

हथेली के समान केवल अंगुलियां (दाहिने हाथ की) छ इंच की दूरी पर रुग्ण भाग के समक्ष फैला कर कुछ मिनटों तक रखने और उनके छोरों से उसमें प्राण जीवन बल प्रेरित करने से उत्तम परिणाम होता है।

कुछ काल रख कर घड़ी के कांटों के समान बाईं ओर से दाहिनी ओर अंगुलियों को घुमाने से पूरी उत्तेजना होती है।

कभी कभी अंगुलियों को छः इंच दूर रख कर बर्मे के समान घुमाओ; मानो तुम रोगी के शरीर में छेद कर रहे हो। इससे बहुत उत्तेजना होती और मंद तथा मरे अवयव चैतन्य होजाते हैं। संभव है, उस भाग में कुछ गर्मी भी आजावे। इन युक्तियों की शक्ति भिन्न रहती है। 'हथेली प्रदर्शन' अत्यन्त साधारण साधन है। इससे बढ़ कर 'अंगुलियों' का, और उत्तरोत्तर 'अंगुलियां घुमाना तथा 'अंगुलियों से छेदना' अधिक प्रभावशाली साधन है।

कभी कभी हाथ के स्पर्श मात्र से बहुत अच्छे लाभ पहुँचे है। एक दम रुग्ण भाग के मांस पर हथेलियां कुछ समय तक रख दी जाती हैं और फिर हटा कर तेजी से परस्पर रगड़ दी जाती और उसी भाग पर पुनः रखदी जाती है। इस तरह कई बार करने से विशेष परिणाम दृष्टिगोचर होता है। सिर दर्द में यह साधन बहुत काम का है। यथार्थ में इसका उपयोग चाहे जिस पीड़ा में कर सकते हैं। अवयवों के अनुसार हथेलियों के रखने के ढंग को बदलते रहना पड़ेगा। ज्ञानतन्तु सम्बन्धी शूलों में यह उपचार पीड़ा को दूर करने में बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है।

धीरे धीरे हाथ से उसकाने रक्त संचार कराने में अथवा उसकी अव्यवस्थित गति को ठीक करने में बहुत लाभ पहुंचता है। इसका शान्ति और समाधानकारक

प्रभाव होता और यह उपचार के अन्त में करने योग्य एक उपयोगी पद्धति है।

रोगी के रुग्ण अवयवों अथवा सारे शरीर पर बहुत ही हलके हाथ से अंगुलियों के छोर छिखाने से 'उसकान' की क्रिया होती है। यह सदा नीचे या बाहर की दिशा में की जावे, ऊपर या भीतर की दिशा में कभी नहीं। यह केवल एक ही दिशा में की जावे और इधर उधर कभी न हो। अंगुलियों के छोर बहुत मंजुल रीति से शरीर पर फिराये जावें। हाथ तक का बोझ भी रोगी पर न गिरने पावे। इसमें मुख्य गुण 'मंजुलता' 'मधुरता' और 'प्रसन्नता' हैं। थोड़े ही अभ्यास से विद्यार्थी को ठीक ठीक अंगुलिया चलाना आजावेगा।

यदि तुम मरीज के पूरे शरीर पर अंगुलियां फेरना चाहो तो एक क्रम शिर से कमर तक और दूसरा क्रम कमर पावों तक अलग कर लेना भला है। शिर से पांव तक एकदम हाथ लेजाना अच्छा नहीं। पूरे शरीर के उपचार में वक्षस्थल और नाभि के पास के भागों पर अधिक ध्यान भला है जिससे कि भीतरी अवयव उत्तेजित हों। और उनका 'चक्र प्रवाह' समान गति शील हो। मालिश का तत्व यही है कि वह भी 'प्राण' पहुँचाने की एक युक्ति है। उपचार का यह ढंग इतना ही पुराना है जितना कि "मनुष्य जाति"। इसका उपयोग लोग युग-युगान्तर से करते चले आये हैं। अलिपनी लिखता है कि मिश्र वासी पुजारी लोग विशेष प्रकार की रहस्यमय और प्रभावशाली 'मालिश' करने में निपुण थे

और वे इसी ढंग से दीर्घ काल के जीर्ण रोगों को दूर करते थे। डिपोक्रेट भी मालिश को बहुत उपयोगी मानता और बहुधा इसी से काम लेता था। उसने लिखा है कि वैद्य तथा डाक्टर को बहुत सी बातें जानना चाहिये। उसे मालिश के उपयोगों से अनभिज्ञ नहीं रहना चाहिए। इसका जैसा चाहो वैसा असर होता है। इससे कड़े पड़े हुये जोड़ या अवयव ढीले पड़ जाते और ढीले अवयव सुन्दर तथा दृढ़ बन जाते हैं। लगभग दो हजार वर्ष पूर्व क्लेशस भी इसी उपचार का उत्साही प्रचारक था। उसने भी अपनी पुस्तकों में इस संजीवन उपचार का बहुत कुछ विवेचन किया है और साथ ही प्रमाणित भी कर दिया है कि उसके बहुत पहिले ही से यह बात लोगों को ज्ञात थी और वे उसका यथोचित प्रयोग करते थे।

रोम में भी प्राचीन काल में इस उपचार का बहुत मान था और धनाढ्य लोग स्वास्थ्य के हेतु नियमतः इससे काम लेते थे। आज कल भी बहुत से धनवान लोग नाऊ को बुला कर चम्पी करवाते हैं। इसका भी अभिप्राय यही है। ट्रालिस्का अलक्षेंद्र नामक एक यूनानी वैद्य रहस्य-मय मालिश करने में दक्ष था और सदैव इसका व्यवहार करता था। उसका कहना था कि इससे शरीर के दूषित पदार्थ दूर होते, ज्ञान तन्तु शान्त होते और पसीना निकलने में सुभीता होता है। वह यह भी मानता था कि इससे कंप भी बन्द होता और कई रोगों पर अच्छा प्रभाव

पड़ता है। उसने इस विषय पर बहुत कुछ लिखा और हिपोक्रेट के साथ सहमत होकर इस गोपनीय मालिश 'को शुद्ध पुरुषों' के सिवाय अन्य मलिन लोगों को देने का निषेध कर दिया। फ्रांस के तेरवें लुइ के वैद्यराज पिटर बोरेल ने लिखा है कि निस्मेस शहर में कचहरी का मुन्शी एक डीगाउट सैकड़ों लोगों को उनके अवयव मलकर चंगा कर देता था।

हमारे समय में भी 'मलना' 'चम्पीकरना' साधारण उपचार है और धीरे धीरे इसका मान बढ़ रहा है। इन दोनों में अपने २ विशेष गुणों के अतिरिक्त चिकित्सक से मरीज को 'संजीवन बल' पहुंचाने का एक बड़ा लाभ है चाहे इसे वे लोग (चिकित्सक) स्वीकार करें या न करें।

'संजीवन बल' से अवयवों को उत्तेजित करने के हेतु मालिश में चिकित्सक मधुरता से हाथ चलावें बल लगाना न आवश्यक और न बांछनीय है क्योंकि अवयवों में 'संजीवन बल' प्रेरित करने से प्रभाव पड़ता है न कि केवल हाथ चलाने से।

इस उपचार के करने में हथेली और अंगुलियों के निचले भाग काम में लाये जावें। अंगुलियों और अंगूठे के छोर (नाखून का भाग) पीछे झुके रहें। चिकित्सक अपने अंगूठे के निचले मांसल भाग से काम लेकर अधिक प्रभाव डाल सकता है। हाथ नीचे की ओर चलाया जावे। कोई इससे भिन्न रीति से हाथ चला कर हथेली के दबाव के

साथ साथ अंगुलियों के चपटे छोरों से विचित्र दबाव डालते हैं। कोई इन छोरों के लगाने से उत्तम परिणाम पाने का दावा करते और कोई सावधानी से इनके उपयोग से बचना चाहते हैं। प्रत्येक काम में यही पाया गया है कि चिकित्सक अपने ही विशिष्ट उपचार द्वारा उत्तम रीति से 'संजीवन बल' पहुँचाने का अनुमान करता है, अतएव उसी को काम में लाता है। यह सब बात चिकित्सक की भावना प्रतीत होती है और इसी विचित्र 'भावना' को मानना ही कुशल नियम है। और यह सब में स्वयं उत्पन्न होजाती है जब वे उपचार करना आरम्भ करते हैं।

कई चिकित्सकों ने उपचार की 'वर्तुल गति' नामक दूसरी पद्धति से अपना बड़ा प्रभाव दिखलाया है। इसमें रुग्ण भागों पर हाथ और अंगुलियां गोलाकार घुमा के मला जाता है। घड़ी के कांटों के समान ही हाथ सदा फेरे जावें विरुद्ध दिशा में कदापि नहीं। इससे कोष कणों में स्फूर्ति आजाती है और मन्द क्रियाओं पर बड़ा उपयोगी प्रभाव पड़ता है।

'गूंदने' की पद्धति कड़ी पड़ी हुई पेशियों तथा गठिया वायु में बहुत उपयोगी है जब कि पीड़ा केवल स्थानीय होती है। गूंदने में पेशियां तथा स्नायु खींचे जाते हैं और समीपस्थ अस्थियों पर ठेले जाते हैं। इसमें सतह से, हथेली से और अंगुलियों से भिन्न भिन्न तीन रीतियों में काम किया जा सकता है।

'सतह' के 'गूंदने' में व्यवहारतः चिमटी ली जाती है। अंगूठे और तर्जनी से चमड़े को दृढ़ता से पकड़ कर खींचते और फिर छोड़ देते हैं जिससे वह अपनी स्वाभाविक दशा प्राप्त कर लेता है। क्रमशः दोनों हाथों से काम किया जाता है। ज्यों ही एक हाथ चमड़े को छोड़ता है और वह अपनी नियम पूर्वक सतह को पहुंचता है, त्यों ही दूसरा हाथ उसे पकड़ कर ऊपर खींचता है। यह निरा उत्तेजक उपाय है और मंद रक्त संचार आदि दोषों को दूर करने में बहुत लाभकारी है।

'हथेली से गूंदना' पूरे हाथ से किया जाता है। चिकित्सक अंगूठा बाहर रख के हथेली और अंगुलियों से मांस तथा पेशियों को पकड़ता है। हथेली तथा अंगूठे का मांसल भाग इस काममें लाया जावे। मांस को दृढ़ता से पकड़े रहो जिससे वह छटक न जावे। गहरा गूंदो कि पेशियों और मांस में भली भांति हलचल पहुंचे। पेशियों पर पूर्णतः प्रयोग होवे किन्तु मात्रा इतनी न बढ जावे कि उससे 'गूंदने से' पीड़ा उत्पन्न होजावे। अत्यन्त अधिक बल मत लगावो, परन्तु मधुर किन्तु दृढ़ होवे। हाथों का क्रमशः उपयोग करो। इसमें भिन्न प्रकार के नाना परिवर्तन हैं जो चिकित्सक को अभ्यास से सुलभ हो जावेंगे। उसे अपने हाथों में चैतन्यता प्रतीत होगी और वह स्वभावतः उसको प्रेरित करने की उत्तम रीति जान लेगा।

'अंगुलियों से गूंदना' तर्जनी और अंगूठे के मध्य में

मांस को पकड़ के हड्डी या अन्य पेशी पर रगड़ कर किया जाता है। जब उत्तेजना देना योग्य समझा गया हो तो थपथपा कर भीतरी दशा जगने की प्रहार-विधि से काम लिया जावे। इस उपचार में कलाई लचीली और ढीली रहे, कदापि कड़ी नहीं, प्रहार लचीला और परिवर्तित रहे। उस में किसी प्रकार का भद्दापन या मसलना कुचलना न होवे।

'प्रहार' की प्रथम पद्धति 'वारबार पीटना' है। इसमें शरीर आधी बन्द मुट्ठी की भीतरी सतह से पीटा जाता है। अंगुलियों के छोर (नाखूनी भाग) और हथेली का मांसल भाग परस्पर मिल जावे हैं। इसकी दूसरी पद्धति 'धार मारना' है। इसमें हाथ से मानो 'काटने' की क्रिया की जाती है- जैसे कुल्हाड़ो से लकड़ी या छुरी से मांस के टुकड़े किये जाते हैं। अंगुलियां मिलाकर हाथ खुला रखा जाता है और कनिष्ठिका की ओर से प्रहार किया जाता है। जब प्रहार होता है तब ढोली मिली हुई अंगुलियां कम्पित चाल में एक साथ आजाती हैं। इसकी तीसरी पद्धति 'थप्पड़ मारना' है। इसमें अंगुलियां कड़ी करके 'थप्पड़ या चांटा' मारा जाता है।

इसकी चौथी पद्धति 'ताली बजाना' है। इसमें हथेली में खोल बनाते हैं जिससे खोखली ध्वनि होती है। इसमें हाथ वैसा ही रखा जाता है जैसा कि सरकसों वा नाटकों में विनोदार्थ पोले हाथ से चांटा मारकर खोखली ध्वनि उत्पन्न की जाती है। थोड़े से अभ्यास से हर कोई इसमें निपुण हो

जावेगा । इसकी पांचवीं पद्धति 'थपकी मारना' है । इसमें अंगुलियों के छोर इकट्ठे रख कर शरीर पर थपकी दी जाती है । क्रमशः हाथों से काम लिया जाता है ।

'प्राण चिकित्सा' की मुख्य पद्धति 'कंप उपचार' के नाम से विख्यात है । इसमें चिकित्सक अपने हाथ की अनेक 'कंप गतियां' करता है । इस उपचार में बहुधा अंगुलियों से काम लिया जाता है । अंगुलियां रुग्ण अवयवों पर दृढ़ता से रखी जाती हैं और फिर भुजा की पेशियों द्वारा सूक्ष्म थरथराहट अथवा 'कंप गति' हाथ को पहुँचाई जाती है ।

यह गति अभ्यास से प्राप्त होती है और प्रथमतः कुछ कठिन होती है । उपचार की यह अत्यन्य प्रभावशाली पद्धति है और रोगी को विद्युत प्रवाह के समान प्रतीत होती है । न तुम अपनी कलाई से उसके शरीर को दबाओ और न हाथ से अधिक बोझा रोगी पर पड़ने दो । जब 'कंप' का उपचार ठीक रीति से काम में लाया जाता है तब रुग्ण अवयव में कंप भिद जाता है । उस समय यदि शरीर पर दूसरा हाथ रखा जावे तो कंप ज्ञात होगा । कोई इस उपचार को मेज पर ग्लास रख कर मेज को 'कंप गति' देने को कह कर सिखलाते हैं । जब ठीक गति प्राप्त हो जायगी तब पानी केवल केन्द्र पर कंपित होगा और इधर उधर नहीं । विद्यार्थी को इस कंप उपचार पर यथेष्ठ समय और ध्यान

देना चाहिए क्यों कि जब यह एक बार प्राप्त हो जाता है तो इसका अद्भुत प्रभाव पड़ता है ।

बहुत से चिकित्सकों ने 'श्वासोपचार' करके आश्चर्य कारक प्रभाव दिखलाये हैं। प्रागैतिहासिक काल में भी लोग इससे परिचित थे। अर्नोव लिखता है कि मिश्र देश वासी रोगों का उपचार इसी पद्धति से करके सफलता पाते थे। कोई कोई तो इसको अन्य रीतियों से बढ़ कर मानते थे। मर्कलिन एक कथा में लिखता है कि एक मुर्दासमान छोटे लड़के में एक जीने फूंक कर अपनी श्वास से चैतन्यता और शक्ति भरदी जिससे वह तुरंत उठ खड़ा हुआ। बोरेलने लिखा है कि भारत के एक भाग में एक पंथ था जो रोगों को इसी रीति से दूर कर देता था। भारत में आज भी ऐसे कई सिद्ध पुरुष हैं जो रोगी पर फूंक मारते और उन्हें मानो नवजीवन देकर चैतन्य कर देते हैं। बोरेल-जो सन् १६५० ई० में जीवित था- एक दृष्टान्त देता है कि एक नौकरने अपने मृतकवत स्वामी को श्वासोपचार से ही चैतन्य कर दिया। वह यह भी विस्मय पूर्वक पूछता है कि जब परमात्मा ने आदमी के शरीर में प्राण-प्रतिष्ठा के हेतु फूंक मारी तब यह क्यों आश्चर्य होवे कि मनुष्य की फूंक भी तद्वत प्रभाव बतलावे। मनुष्य भी तो उसीका अंश है और उसी दिव्य श्वास का अंश भी रोगी में कम से कम स्वास्थ्य पुनः ला सकता है। स्पेन

देश में कुछ लोग- ईसामेडोर-रोगीयों को लार और श्वास से ठीक करते हैं।

साधारणतः श्वासोपचार में दो रीतियों से काम लिया जाता है। एक में रुग्ण भाग पर स्वच्छ रूमाल या ऊनी कपड़ा रखके आधे खुले हुए मुँह से शरीर पर दबाते हैं जिससे श्वास इधर उधर न जासके, फिर धीरे धीरे दृढ़ता से फूंक मारी जाती, है मानो श्वास रोगी के शरीर में भिद रही हो। रूमाल बहुत गर्म हो जायगा और रोगी को भी ऊष्णता ज्ञात होगी। दूसरी में रोगी के शरीर से लगभग एक इंच दूर ओंठ रखे जाते और ठीक उसी तरह श्वास छोड़ी जाती है जैसा ठंड काल में हाथों को गरम करने के लिये। ओंठो को सिकोड़ कर एक फुट की या कुछ अधिक दूरी से भी श्वास छोड़ी जाती है जैसे कि मोम बुझाने के लिये फूंक मारी जाती है। इस रीति से शांति होती और कभी कभी तन्द्रा आने लगती है। अत्यन्त अध्ययन के कारण होने वाली सिर पिड़ा आदि को साफ करने में भी यह बहुत लाभ दायक है।

कोई चिकित्सक आंख का भी उपयोग करते हैं। वे सारे शरीर वा रुग्ण भाग पर दृष्टि फेरते हैं, मानो वे दृष्टि की किरणों से रोगी को नहलाते हैं।

कोई बहुधा बीच में अभिमंत्रित रुमाल आदि रख कर 'सजीवन बल' प्रेरित करते हैं। वे रूमाल पर ठीक उसी तरह पहिले से प्रयोग कर रखते जैसे किसी मनुष्य

पर कर रहे हों। रूमाल आदि सरीखी वस्तु पर प्रयोग करने के लिए चिकित्सक उसको तब तक झाड़ता रहे जब तक वह उसको प्रयोग-प्रभावान्वित न समझले। जब रोगी इस वस्तु का काम में लेता है तब धीरे धीरे अपना प्रभाव उस पर डालती हुई प्रतीत होती है। कुछ दिनों में उसका प्रभाव चला जाता है कोई कुछ देर तक हाथों में रख कर वस्तु को 'अभिमंत्रित' कर देते हैं।

कई उपचार एक साथ करने में सदैव अन्त में उपरोक्त अंगुलियों से 'खटखटाने' का प्रयोग करना अच्छा है। इससे रोगी शान्त, सुचित्त और सन्तुष्ट होजाता है। उपचार के अन्त में रोगी को 'शान्त' करने से कभी मत चूको ये सब बातें चिकित्सक में आत्मबुद्धि से आजावेंगी; हर एक बात केवल सिखाने से नहीं आती। अनुभव सबको सब कुछ समय समय पर सिखला देता है। कोई भी दो चिकित्सक ठीक एकसी पद्धति का कभी उपयोग नहीं करेंगे। उनमें भिन्नता रहना स्वाभाविक है। इस लिये इस काम में अपनी सहज बुद्धि से काम लेने में कभी संकोच मत करो।

आठवां अध्याय

प्राणमय श्वासोच्छ्वास

प्राणचिकित्सा में प्राणमय श्वासोच्छ्वास एक विशेष महत्व रखता है। इसी साधन से 'प्राण' की मात्रा बढ़ाई जाती और रुग्ण भागों में बांट दी जाती है।

सतत: कंप पर प्राणमय श्वासोच्छ्वास का मुख्य आधार है। यह कंप विश्व में सदैव दृष्टि गोचर होता है। प्रत्येक वस्तु में सदा कंप उपस्थित रहता है। विश्व में कहीं निस्तब्धता नहीं है। बड़े बड़े पिण्डों से लगा कर अणुओं तक प्रत्येक वस्तु गतिशील और कंपायमान है। यदि एक अणु भी अपनी गति किंवा कंप बंद कर दे तो सारी प्रकृति में हलचल मच जाय। सतत कंप से अर्थात् उसके द्वारा ही विश्व का कार्य चला जा रहा है। बल (शक्ति) लगातार पदार्थ पर अपना प्रभाव डाल रहा और जीवन का परिवर्तन उत्पन्न कर रहा है।

मनुष्य के शरीर के परमाणु भी सतत कंप स्थिति में रहते हैं। मानवी व्यवहार में सर्वत्र कंप और गमन दृष्टिगोचर होते हैं। शरीर के कोषकण नित्यशः नष्ट होते और नवीन उत्पन्न होते रहते हैं। उनमें परिवर्तन होता ही रहता है। जहां देखो वहां सदा परिवर्तन ही की धुन है।

'समध्वनि' विश्व व्याप्त है। महान सूर्य से लगा कर निकृष्टतम अणु तक प्रत्येक कंपित है और तदनुपात में अपनी कंपगति रखता है। सूर्य के आस पास ग्रहों का अपनी कक्षा में घूमना, समुद्र में ज्वारभाटे का आना जाना, तरँगों का ऊंचा उठना नीचे गिरना, हृदय का धड़कना, श्वासोच्छ्वास चलना आदि सब काम 'समध्वनि' के नियम को मानते हैं। इस नियम के साथ में सब विकास एवं परिवर्तन होता है।

सब प्रकार के पदार्थ तथा हमारे शरीर भी इसी नियम के आधीन हैं। समध्वनि के नियम को समझ लेने से योग सिद्धान्त और प्राण चिकित्सा के प्रयोग बहुत कुछ ध्यान में आजाते हैं। शरीर के कोषकणों की समध्वनि के साथ अपनी श्वास क्रिया को मिला कर योगी 'प्राण' को विशाल मात्रा में आत्मसात करने की युक्ति लगा लेता और अपने ईष्टपरिणाम प्राप्त करने के लिए उसे भेज भी देता है।

समुद्र से भूमि की ओर बहने वाली एक छोटी खाड़ी के समान तुम्हारा अधिकृत शरीर है। यद्यपि प्रत्यक्ष में वह अपने नियमों के आधीन है किन्तु यथार्थ में महासागर के ज्वार भाटे के उतार चढ़ाव के वश में है। 'जीवन' का महासागर बढ़ता घटता और उतरता चढ़ता है और हम सब उसके कंपों और समध्वनि में साथ दे रहे हैं। स्वाभाविक स्थिति में तो हम बराबर यह करते हैं पर जब

द्वार लुप्त से रुक जाता है तब हम मूलसागर से 'प्राण' पाने को वंचित रह जाते हैं। हमारे में तुरन्त असमंजसता प्रकट होने लग जाती है।

तुमने सुना होगा कि शब्द कभी कभी ऐसी शक्तिशाली तरंगें मारता है जो पुलों को नष्ट भ्रष्ट कर देती हैं। यही कारण है कि सेना को पुल पर जाते समय कदमों को बदलने का आदेश दिया जाता है अन्यथा समान गति की सम ध्वनि से शब्द-तरंगे सेना और पुल दोनों का एकदम गिराकर ढेर करदे। समध्वनि की गति के इन उदाहरणों से शरीर पर 'समध्वनि' के श्वास से होने वाला प्रभाव तुम्हारे ध्यान में आगया होगा। सारा शरीर कंप को ग्रहण करता और इच्छा के साथ सानुराग होता है जिससे फुफुसों में समध्वनि गति उत्पन्न हो जाती और वे इस पूर्ण सामंजस्य में-सानुराग में-इच्छा के आदेशों को तुरन्त मान लेते हैं। इस तरह सानुरक्त शरीर से योगी को स्वेच्छानुसार शरीर के किसी भी भाग में रक्त संचार को बढ़ाने में कोई अड़चन नहीं होती और इसी तरह वह किसी भी भाग को सबल तथा चैतन्य करने को ज्ञान तन्तु शक्ति की धारा अधिक मात्रा में भेज सकता है।

इसी तरह योगी पुरुष 'समध्वनिमय' श्वास से जीवन दाता महाभंडार के 'झोंके' को ग्रहण करता और प्राण को विशालमात्रा में अधिकृत तथा आत्मसात करके स्वेच्छानुसार भेजने में समर्थ होता है। वह दूसरों

तक 'प्राण' पहुंचाने में इस साधन का उपयोग कर सकता है। 'समध्वनि मय श्वासोच्छ्वास 'मानसिक' और 'चुंवक' आदि चिकित्साओं के महत्व को कई गुना बढ़ा देता है।

इसमें मुख्यतः मानसिक भावना किंवा समध्वनित्व प्राप्त करना है। जो यत्किंचित संगीत जानते हैं वे 'समध्वनि' के भाव से अवश्य परिचित हैं। अन्यजन सिपाहियों के एक साथ कदम रखते हुए एक, दो, तीन, चार आदि के साथ चलने को देख कर इस भावना का अनुमान कर सकते हैं।

योगी अपनी 'समध्वनि' का समय हृदय के स्पंदन से स्थिर करता है। लोगों में यह स्पन्दन भिन्न वेग से होता है; परन्तु प्रत्येक के लिए उसका हृदय स्पन्दन ही ठीक 'समध्वनि' का मान है क्यों कि यही विशेष स्पन्दन उसका 'समध्वनि' मय श्वासोच्छ्वास है। अपनी नाड़ी पर अंगुली रख कर और एक, दो, तीन, चार इत्यादि गिनती लगा कर अपने स्वभाविक हृदय-स्पन्दन को जांचो और अपने मन में उसकी 'समध्वनि' की भावना पक्की कर लो। थोड़े से अभ्याससे तुम सहज ही में इस को परख सकोगे। आरम्भ में मनुष्य बहुधा छः बार नाड़ी स्पन्दन तक श्वास लेता है पर अभ्यास से इस अवधि को बहुत कुछ बढा सकता है।

'समध्वनि' मय श्वास के लिए योग का नियम है कि श्वास लेने और छोड़ने की अवधि एक सी रहे और श्वास रोकने तथा छोड़ने और पुनः लेने के मध्य की अवधि पहिले से-लेने तथा छोड़ने से-आधी रहे (पूरक और रेचक की अवधि बराबर हो पर भीतरी तथा बाहिरी कुंभक की अवधि पूरक या रेचक की अवधि से आधी रहे ।

समध्वनिमय श्वास के निम्न अभ्यासों को पूर्णतः अङ्गीकृत करलो क्योंकि यही अनेक साधनों का आधार है । इसी का उल्लेख आगे किया जाता रहेगा ।

समध्वनिमय श्वासोच्छ्वास

(१) किसी भी आसन में बैठ या खड़े होकर छाती, गर्दन और सिर को यथासंभव एक सीध में रखे। कंधे कुछ पीछे झुके हों और हाथ आराम से अङ्क में रखे हों । इस स्थिति में शरीर के भार को पसुलियां बहुत कुछ संभालती हैं और यह आसन सुगमता से कुछ काल तक ठहर सकता है। योग का यह अनुभव है कि कोई भी छाती को सिकोड़ कर और नाभी के पास के भाग को फुलाकर इस तरह के समध्वनिमय श्वास का उत्तम परिणाम नहीं पा सकता है ।

(२) छ नाड़ी स्पन्द को गिनते हुये धीरे से गहरी श्वास भीतर खींचो ।

(३) तीन नाड़ी स्पन्दन गिनते हुये रोको ।

(४) छ नाड़ी स्पन्दन गिनकर नथनों से श्वास छोड़ दो

(५) छोड़ने और लेने के मध्य में तीन नाड़ी स्पन्दन गिनो।

(६) कई वार इसका पुनरावर्तन करो पर आरम्भ ही में करते करते अपने को थका मत डालो।

(७) जब तुम क्रिया बन्द करना चाहो तब सरल श्वास लो जिससे तुम्हें आराम मिलेगा और तुम्हारे फुफुस स्वच्छ होंगे ।

थोड़े से अभ्यास से तुम लेने और छोड़ने की अवधि को पन्द्रह स्पन्दनों तक बढा सकोगे। तदनुपात में रोकने की तथा छोड़ने और पुनः लेने के मध्य की अवधि भी बढाने का स्मरण रहे।

अवधि को बढ़ाने के प्रयत्न में कभी भी अपने आप को पीड़ा मत दो परन्तु 'समध्वनि' मय गति प्राप्त करने में यथेष्ट ध्यान दो क्योंकि श्वास की अवधि से इसका ही महत्व अधिक है। जबतक तुम्हें गति का सम 'झोका' न मिले और अपने सारे शरीर में कंपशील गति के 'समध्वनित्व' की प्रतीति नहो तबतक तुम प्रयत्न और अभ्यास करते रहो। इसके थोड़े अभ्यास से और पीछे पड़ने से तुम्हारी उन्नति होगी और इसका आनन्द इस कामको तुम्हारे लिये सुगम करदेगा। योगी लोग बड़े धैर्य से पीछे पड़कर काम करने वाले होते हैं और इन्ही गुणों से वे महान सिद्धियों को हस्तगत कर लेते हैं।

निम्न आदेशों से तुम्हें प्राण चिकित्सा में श्वास के उपयोग की भावना हो जावेगी।

साधारण आदेश।

याद रखने की मुख्य बात यही है कि 'समध्वनि' मय श्वास और संयतविचार द्वारा तुम 'प्राण' की यथेष्ट मात्रा प्राप्त कर सकते और दूसरे के शरीर में उन्हें भेजकर क्षीण भागों तथा अवयवों को चैतन्य करके स्वास्थ्य प्रदान कर सकते और रुग्ण दशाओं को हटा सकते हो। तुम्हें प्रथम इष्टस्थिति की स्वच्छ कल्पना करते आना चाहिए। यह कल्पना इतनी स्वच्छ होवे कि तुम रोगी के शरीर में अपनी भुजाओं तथा अंगुलियों के छोरों से 'प्राण' धारा को निकलते वस्तुतः जान सको। कुछ देर तक श्वास लो जबतक वह ठीक संयत न हो जावे; फिर रोगी के रुग्ण अवयव पर हलके से अपने हाथ रखो। यह भावना करते हुए श्वास समगति लो कि रुग्ण अवयवों में ठीक प्राण भर रहे हो, उसको उत्तेजित कर रहे हो और दूषित कणों को बाहर फेंक रहे हो, मानो कोई मैले पानी को हटा कर घड़े में स्वच्छ पानी ठेल रहा हो। यदि यह 'पंप क्रिया' मानसिक भावना स्वच्छ हुई तो इस उपाय से बड़ा प्रभाव पड़ता है। श्वास लेना माना पंप की मुठिया उठाना और श्वास छोड़ना मुठिया गिराना है।

इस तरह रोगी में प्राण भरजाते और दूषित कण बाहर आजाते हैं। प्रत्येक बार हाथ उठाकर अगुलियों के झटकारो, माने तुम दूषित कणों को बाहर फेंक रहे हो। बहुधा यह करना और उपचार के अनन्तर हाथ धो डालना भला है अन्यथा रोग का संक्रमण तुममें हो जाय। उपचार के समय तुम पंप के समान माध्यम बन कर महा भंडार से 'प्राण' को एक सी धारा में रोगी के शरीर में जाने दो तुम्हें हाथों की तेजी का आवश्यकता नहीं है परन्तु 'प्राण' केवल सरलता से रुग्ण भाग में पहुंचजावे। उपचार में बहुधा 'समध्वनि मय' श्वास रहे जिससे 'समध्वनि' स्वभाविक रहे और प्राण सरलता से गति करे। कपड़े को हटा कर चर्म पर ही हाथ रखना अधिक भला है, पर जब ऐसा करना योग्य न हो तब कपड़े पर ही रखे जांय। उपचार में बहुधा ऊपरोक्त ढंग को बदल कर दूर दूर रखी हुई अंगुलियों से धीरे धीरे शरीर को आघात कर दो। इससे रोगी को बहुत समाधान होता है। दीर्घ काल के रोगों में समयानुसार 'निकलो' 'निकलो' अथवा 'दृढ़हो' 'दृढ़हो' शब्दों द्वारा मानसिक आदेश देना लाभदायक होता है क्यों कि शब्द तुम्हें इच्छा शक्ति को अधिक बलिष्ठ बनाने में सहायता देते हैं। रोग की आवश्यकतानुसार तुम इन आदेशों में परिवर्तन करलो और अपने विवेक तथा निर्णय से काम लो। यहां तो साधारण आदेश दिये गये हैं और तुम इन्हे सैकड़ों भिन्न रीतियों से काम में ला सकते हो। यदि इन्हीं

उपरोक्त साधारण आदेशों का सावधानी से मनन और प्रयोग किया जावेगा तो कोई भी वही काम करके दिखला सकेगा जो कि बड़े बड़े प्रसिद्ध 'चुंबक चिकित्सक' करते हैं यद्यपि उनकी रीतियां आडम्बर युक्त और पेचीदा हैं। वे अप्रत्यक्ष रीति से 'प्राण' का ही प्रयोग करते पर उसे 'चुंबक चिकित्सा' का नाम देते हैं। यदि वे लोग भी 'समध्वनि' मय श्वासोपचार को अपनी 'चुंबक चिकित्सा' के साथ मिला लिया करें तो उनकी निपुणता दुगुनी बढ़ जायगी ।

अध्याय नवां

प्राणमय उपचार

हाथों की तैयारी करके उपचारों का आरम्भ करना ठीक है:-

हाथों की तैयारी- कुछ मिनिटों तक तेजी से हाथ रगड़ो और फिर उन्हें इधर उधर थोड़ी देर तक झटकारो, जब तक कि उनमें अनिर्वचनीय चैतन्यता न आजावे और वे शक्ति से परिपूर्ण न हो जावें। एक साथ मुट्ठी बांधो और फिर शीघ्रता से खोलो। इस तरह कई बार करने से उनमें अद्भुत उत्तेजना आजावेगी। इसकी अब परीक्षा करो और देखो उनमें कितना बल आता हुआ दीखता है।

प्राण-चिकित्सा के कोई अभ्यासी साधारण उपचार बहुत समय तक देते हैं किन्तु अन्यजन साधारण उपचार केवल कभी कभी करते और रुग्ण भागों के विशेष उपचार में अधिक काल लगाते हैं। यथार्थ में बहुधा साधारण उपचार करना उत्तम है क्यों कि इससे सारे शरीर में रक्त संचार की समान गति हो जाती और प्रत्येक पेशी, ज्ञानतन्तु तथा अवयव को उत्तेजना मिलजाती और सारा शरीर नवीन बल तथा जीवन से क्रिया करने लग जाता और स्वाभाविक स्थितियों तथा क्रियाओं को पुनः स्थापित होने में वास्तविक सहायता मिल जाती है।

साधारण उपचार-रोगी को पट सुला कर उसकी छाती के नीचे एक तकिया लगादो, जिस पर उसकी ठाड़ी

सहूलता से रह सके और हाथों को बगलों के साथ आराम से रखदो।

अब अपनी तर्जनी और मध्यमा को उसकी पीठ पर ऐसी रखो कि रीढ़ (मेरुदंड) की हड्डी उनके मध्य में रहे। अब धीरे धीरे दृढ़ता से अंगुलियों को नीचे खिसकाओ। यदि तुम्हें सूक्ष्म गांठे मालूम पड़ें तो तुम समझो कि (मेरुदंड) से निकलने वाली कुछ ज्ञानतन्तु-रज्जुओं में वल खाकर गांठे पड़गई हैं और इस कारण किसी अवयव तथा भाग को पीड़ा पहुँच रही है। यदि तुम्हें कहीं आस पास के भाग की अपेक्षा अधिक ठंड या गर्म ज्ञान हो तो यह समझो कि रीड में कुछ पेशी की सिकुड़न है जो ज्ञानतन्तु-केन्द्रों के संचार में बाधा डाल रही है और शरीर में तत्सबंधी भाग में पीड़ा तथा अस्वाभाविक क्रिया उत्पन्न कर रही है। इन स्थानों को याद रखो कि तुम विशेष कर उन्हीं का सावधानी के साथ 'उत्तेजक कंप' तथा 'हस्त लाघव' द्वारा उपचार कर सको। फिर रोगी को घुमा कर चित लिटा दो और सिकुड़न, सूक्ष्म गंठान, सूजन आदि सबका क्रमशः ध्यान रखते हुए सारे शरीर पर हाथ फेर दो।

निम्न रीति से पूर्णतः रीढ़ का उपचार करके यथार्थ साधारण उपचार आरम्भ करो। कोमलता और सावधानी से पूरी रीढ़ को गले से ऊपर तक टटोलो और सूक्ष्म स्थानों पर ठंड या गरमका अनुमान करते हुए विशेष

ध्यान दो। पहिले एक ओर फिर दूसरी ओर हरएक बिन्दु को सावधानी से निश्चित करो। रीढ़ द्वारा उसे 'कंपोपचार' देकर साधारणतः अंगुलियों से मृदु प्रहार करदो। इससे उसको बहुत समाधान हो जायगा।

इसके उपरान्त उसकी गर्दन के पीछे पेशियों को पूरी तरह से 'गूंदो' और धीरे धीरे उसके गले को टटोलो। इस उपचार से मस्तिष्क की ओर अथवा उससे नीचे की ओर रक्त संचार खुलासा और सम वेग से होने लगता है।

अनन्तर कंधों और भुजाओं को क्रमशः टटोल कर कंधे से अंगुलियों के छोरों तक धीरे धीरे ठपकार दो।

अनन्तर छाती, पीठ और बगलों को क्रमशः टटोल कर ठपकार दो। जब योग्य और रोगी को सुखद दीखे तब कंप क्रिया लगाओ। जब तुम योग्य समझो तब शरीर के कड़े भागों को अन्य भागों पर रौंद डालो। इसी तरह टांगों और पैरों पर प्रयोग करो। अन्त में ठपकार देने का सदा ध्यान रखो।

अनन्तर विशेष स्थानों को अर्थात पीड़ा या रोग से ग्रसित भागों को पूर्वोल्लिखित आदेशों के अनुसार नाना प्राकार के उपचार जो योग्य हों, दो।

अमाशय के गड्ढे अथवा 'सूर्य ग्रंथि' पर दाहिना हाथ रखना तथा पीठ के मध्य में बांया हाथ रखना और प्राण अर्थात जीवन बल की धारा को शरीर में कुछ

मिनिटों तक बहने देना अच्छा उपाय है। रोगी के शूल का उपचार करने में अच्छे गर्म होने तक हाथों को तेजी से रगड़ो और दाहिना हाथ शूल स्थान पर तथा बांया ठीक उसके विरुद्ध स्थान पर रख कर भावना करो कि यह प्रवाह शूल को यहां से भगा देगा। विशेष अथवा साधारण उपचार के अन्त में सदैव ठपकार दिया करो क्योंकि इससे रोगी को समाधान और रक्त संचार सम वेग से होने लगजाता है। इस के प्रभाव से तुम को आश्चर्य होगा।

साधारण उपचार में टटोलते समय कभी कभी ठहर जाओ और शरीर पर हाथों को स्थिर रहने दो। दाहिना हाथ सामने और बांया हाथ पीछे पीठ पर रहे। इस से धारा स्वतन्त्रता पूर्वक भागों को पहुंच कर बहती है।

वद्धकोष्ट- यह पीड़ा साधारण उपचार से कलेजे तथा नाभी के आस पास विशेष टटोलने से दूर की जाती है। कलेजे और अँतड़ियों पर 'कंप' भी इसमें बहुत लाभ-दायक होता है। भागों में धारा प्रवाहित करने के ऊपरोक्त ढंग को मत भूलो। अंत में ठपकार दो। रोगी को अधिक पानी पीने की सलाह दो क्यों कि यह रोग बहुधा तरल पदार्था की कमी से होता है।

अनपच- इस पीड़ा का निवारण भी ऊपरोक्त ढंग से किया जाता है। पाचन क्रिया संबंधी अवयवों में 'प्राणधारा' पहुंचाने का विशेष ध्यान रखा जाता है।

अतिसार-संग्रहणी-यह पीड़ा कभी कभी 'प्राणचिकित्सा' से तुरन्त ही दूर हो जाती है। इसके उपचार में बहुत कोमलता से काम लो और टटोलने को छाड़ धीरे से ठपकार दो तथा 'प्राणधारा' को भागों में पहुंचा दो। इसका विशेष उपचार 'सलेंकनिक' नामक ज्ञानतन्तु रेषा को-सुषुम्णा की वह शाखा जो आमाशय से होती हुई प्लीहा पिंड तक गई है- सम वेग में लाना है। इस रेषा की प्रवृत्ति चमके हुये घोड़े के समान बहुधा 'भड़ककर भागने' की रहती है। इस विशेष उपचार से उस पर बोझ पड़ता और वह ठिकाने आजाती है। चिकित्सक का मन उस स्थान पर लगा रहे और यह दृढ़ता से यह आदेश -"शान्त हो" -करता रहे। इसको उत्तम रीति यह है कि रोगी को चित लिटा कर उसकी प्रत्येक बाजू में सब से नीचे की पसलियों के पास रीढ़ से लगा हुआ एक एक हाथ रखे और उसे कुछ इंच इस तरह उठावे कि कंधे और कुले जमीन से लगे रहें और पीठ कमान समान उठ जावे। शीघ्रता न करके यह काम मंद गति से किया जावे। रोगी को पेशियों को ढीली करने को कह दो। पन्द्रह मिनिटों तक उसे आराम दो और यदि पीड़ा दूर नहीं हुई है तो फिर से उपचार करो। उपचार के अन्त में ठपकार दो। तुम्हें आश्चर्य होगा कि इस उपचार से पीड़ा बहुधा बहुत शीघ्र दूर हो जाती है। दृढ़ता से आदेश "शान्त हो" देते हुए तुम्हें अपना मन उसी स्थान पर लगा रखना चाहिए।

कलेजे की पीड़ाएं- यकृत शूल - विशेष उपचार सहित साधारण उपचार से दूर की जाती है । कलेजे पर हाथ फेरा जाता है। शूल स्थान पर 'कंपोपचार' किया जाता है। उपचार के अन्त में ठपकारने को मत भूलो।

गुर्दे की पीड़ाएं--वृक शूल- ऊपरोक्त रीति से दूर की जाती है। इसमें विशेषता यही है कि विशेष उपचार गुर्दों ही पर किया जाता है ।

गठिया वाय- साधारण उपचार सहित विशेष 'गूंदने' और रुग्ण भाग को टटोलने से दूर की जाती है ।

नाड़ी चसकना--रुग्ण--ज्ञानतन्तु-- रेषा--जनित-शूल- इस पीड़ा में साधारण उपचार के साथ साथ विशेष गूंदना और रुग्ण भाग का टटोलना किया जाता है ।

नपुन्सकत्व अथवा जननेन्द्रिय शिथिलता- साधारण उपचार और विशेष टटोलने से दूर की जाती है। रीढ़ का निचला भाग अथवा शिखा और कूलों का ऊपरी भाग चैतन्य किये जाते हैं ।

स्त्रियों के रोगों को साधारण उपचार से बहुत कुछ लाभ होसकता है। शूल स्थान के पास के भागों पर कोमलता से विशेष उपचार किया जावे। भागों में 'कम्प' देने पर विशेष ध्यान रखा जावे ।

उपचार सम्बन्धी सामान्य कथन--उपचार के उपरोक्त ढंग केवल पथ प्रदर्शक हैं। चिकित्सक को अपनी आत्म-

प्रेरणा से काम लेना चाहिये। अपने काम में प्रेम रखने से यह प्रत्येक चिकित्सक में आजाती है। जिनको चंगा करने की तीव्र इच्छा होती है उन्हें प्रकृति अवश्य इस गुण को प्रदान करती है। जब यह तुम को प्राप्त हो जायगी तब यह तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आजावेगी। पहिले तुम्हें पिछले अध्याय में लिखे हुये प्रत्येक उपचार से पूर्णतः परिचित होजाना चाहिए। जिससे तुम प्रत्येक 'गति' इतनी सुगमता और स्वाभाविकता से कर सको जितनी कि तुम खाने और कपड़े पहिनने आदि कामों में हाथों की अचूक गति करते हो। जब तुम्हें 'गतियां' इस तरह प्राप्त हो जावेंगी, जब वे स्वाभाविक बन जावेंगी, तब तुम ही प्रत्येक उपचार के काम में कुछ विशेष गतियों से काम लेने में विवश होवोगे और तुम्हें ज्ञात हो जावेगा कि किसी पुस्तक अथवा शिक्षक के आदेशों को वा विशेष नियमों को मानने की अपेक्षा इसी रीति से आवश्यकताएं अधिक अच्छी तरह से पूर्ण होती हैं। शरीर में एक 'उपचारेंद्रिय' है और यह भी उतनी ही यथार्थ है जितनी कि कर्म और ज्ञान इन्द्रियें हैं। यदि तुम इस काम में लग जावोगे तो तुम्हें इसका पता चल जायगा। उपचार की प्रत्येक विशेष गति के विवरण से पूर्णतः परिचित होजावो और अपने किसी मित्र या परिजन पर जो तुम्हें सहायता देने को राजी हो, अभ्यास करो। इस तरह से थोड़े ही

मिनिट यथार्थ अभ्यास करना कई पुस्तकों को पढने से अच्छा है। अपने में और तुम्हारे द्वारा प्रवाहित शक्ति में श्रद्धा रखो तो तुम अवश्य सफल होगे।

दूरस्थ चिकित्सा:-

प्रेषक की भावना से 'रंगे' हुए प्राण दूरस्थ मनुष्यों को भी जो उसको लेने के इच्छुक हैं, भेजे जा सकते हैं और इस तरह चिकित्सा का काम होसकता है। 'अनुपस्थित चिकित्सा का' जिसका हाल पाश्चात्य संसार ने अभी थोड़े वर्षों से सुना है, यही रहस्य है। चिकित्सा की भावना उसके प्राण को रंग देती और टक्कर दे देती है जिससे वह अंतरिक्ष में तरंगें मारता हुआ रोगी के मानस यंत्र में स्थान पा जाता है। वह अदृश्य रहता और 'मार्कोनी' की तरंगों के समान मध्य वाधाओं को पार कर जाता और उस मनुष्य को खोज लेता है जो उसे लेने को पूर्व से ही उद्यत रहता है। दूरस्थ मनुष्यों का उपचार करने के लिए तुम्हें उनका 'मानसिक चित्र' बनाना चाहिये-ध्यान करना चाहिए-और तुम्हें ऐसा प्रतीत होना चाहिए कि तुम उनके साथ साक्षात हो गये हो। यह मनोवैज्ञानिक क्रिया है और चिकित्सक की मानसिक कल्पना पर निर्भर है। जब मानसिक साक्षातकार स्थापित हो जाता है तो तुम उसे इंद्रियगोचर कर सकते हो। तुम्हें

ऐसा प्रकट होगा मानो वह तुम्हारे पास ही है। यह इतना स्पष्ट है कि थोड़े से अभ्यास से तुमको यह अवगत हो जावेगा और किसी को पहिली बार में ही यह स्पष्ट हो जावेगा। जब 'साक्षात' कार स्थापित हो जावे तब उस दूरस्थ रोगी को मानसिक भावना से कहो कि मैं तुम्हारे पास जीवन शक्ति भेज रहा हूँ। यह तुम्हें उत्तेजित करेगी और आराम पहुंचावेगी। फिर यह भावना करो कि समगति के श्वास के प्रत्येक विसर्जन-रेचक-के साथ प्राण तुम्हारें मन से निकल रहा और तुरन्त अन्तरिक्ष में यात्रा कर रोगी को पहुँच रहा और आराम दे रहा है। तुम चाहो तो उपचार का समय नियत करलो परन्तु ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम चाहे जब तरंगे प्रवाहित करो रोगी की ग्राहक स्थिति ही उसे उनको लेने को उद्यत कर देती है क्यों कि वह तुम्हारे 'मनोबल' को पाने की आशा लगाये बैठा रहता है। यदि तुम दोनों किसी विशेष समय के लिये सहमत होगये हों तो रोगी अपने सब अङ्गों को शिथिल करके 'ग्राहक' स्थिति में बैठ जावे। पाश्चात्य संसार के 'अनुपस्थित उपचार' का यही ऊपरोक्त मुख्य सिद्धान्त है। थोड़े से अभ्यास से तुम भी वैसे ही काम करने लग जाओगे जैसे बड़े बड़े विख्यात चिकित्सक करते हैं।

अध्याय दसवां

अपने आप की प्राण चिकित्सा

प्राण बल से न केवल परस्पर उपचार करना संभव है वरन कोई भी अपने आपका उपचार कर सकता और उसका विचारणीय प्रभाव पड़ता है। पहले पहल यह तो विचित्र जान पड़ता है क्योंकि इस चिकित्सा का मुख्य सिद्धान्त यही प्रतीत होता है कि चिकित्सक रुग्ण भागों में 'प्राण बल' की सामग्री भेज कर उन में 'प्राण की कमी को पूरी कर देता है। वह इस कमी को पूरी करने के लिये 'अधिक प्राण' कहां पाता है? इसकी यथार्थता तब प्रकट हो जाती है जब यह याद हो कि हर कोई विश्व-भंडार से 'प्राण खींच सकता और उसे अवयवों में विभाजित कर सकता है। यह समझ में अब आजायगा कि इस रीति से हर कोई अपनी आप चिकित्सा कर सकता है। किसी का कहना है कि भागों में प्राण की कमी का कारण सम विभाजन में गांठ या सूजन जनित बाधा हैं। (गांठ या सूजन से प्राण की समगति में बाधा आजाती है जिससे वह समभागों में बराबर नहीं पहुँचता और इसी से वहां उस की कमी रह जाती है।) प्राण चिकित्सा की यथार्थ रीति सारे शरीर में प्राण की समगति कराकर बराबर विभाजित

कर देना है। चाहे जो बात मानो, हर कोई अपने आप को 'प्राण चिकित्सा' करके लाभ उठा सकता है।

इन उपचारों को शुद्धता से करने के लिये पिछले अध्यायों में लिखी हुई प्राण चिकित्सा संबन्धी गतियों और रीतियों से परिचय पालेना ठीक है उपरान्त में हर कोई इन गतियों की परीक्षा अपने आप पर करने का प्रयत्न करे। आरम्भ में श्वास क्रिया से मनुष्य अपने ज्ञान तन्तु केन्द्रों को नवीन प्राण से पूरित करे और फिर साधारण उपचार की रीति से सारे शरीर में बराबर पहुँचाने का प्रयत्न करे और रुग्ण भागों का विशेष उपचार कर लेवें। यह आश्चर्य होगा कि इस रीति से हर कोई अपना आप कितना लाभ कर सकता और कितना उत्तेजित तथा बलवान दीखता है। निःसन्देह अपने आप पर उपचार करने में इतनी सुगमता न हो क्योंकि हाथ फेरने में कुछ कठिनाई होती है परन्तु थोड़े से अभ्यास से और उपचारों के करने में थोड़ी बुद्धि लड़ाने से बड़ा आश्चर्यजनक काम होता है।

'टटोलना' 'गूंदना' 'ठपकारना' 'कम्प' और नाना रीतियों से काम लेकर अपने आपकी चिकित्सा में हर कोई सफलता पा सकता है। पिछले अध्यायों की बातों को यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं दीखती। उन बातों का यथोचित अभ्यास कर लेने से तुम चिकित्सा के एक

अपूर्व बल से संपन्न हो जाओगे और यदि उनको साधारण कह कर तिरस्कृत करोगे तो तुम ही पछताओगे । कई मनुष्यों ने अपनी चिकित्सा आप करके लाभ उठाया है। यह कोई बात नहीं कि अब ऐसा करना किसी के लिये कठिन हो। महा मन्त्र तो यही है 'उठो और पूर्वोल्लिखित आदेशों के अनुसार कार्य करना आरम्भ करदो'। श्वास क्रियाओं को मत भूलो क्योंकि पूरे उपचार की मुख्य नींव वे ही हैं ।

बहुधा लोग सरल और साधारण बातों को तुच्छ समझ बैठते और बाहरी चमक दमक तथा आडम्बर देखकर उस पर लट्टू होजाते हैं। इसी तरह संभव है इस छोटे से अध्याय की तुम भी महत्ता न समझो क्योंकि इसमें पेचीदा बातों को व्यर्थ शब्दाडम्बर बढ़ा कर नहीं लिखा है किन्तु सरल और साधारण शब्दों में कह डाला है। सच पूछा जाय तो सरल साधारण वस्तुएं ही बहुधा अत्यन्त महत्व की होती हैं। अस्तु। यदि तुम इसको सावधानी से पढोगे तो तुम्हें आश्चर्य जनक प्रभाव उत्पन्न करने वाली उपयोगी और महत्व की बातों का संकेत मिलेगा।

प्राण विसर्जन

शरीर को ढीला करके फर्श या बिस्तर पर लेट सम-ध्वनि से श्वासोच्छ्वास करो। हाथ धीरे से 'सूर्यग्रंथि'

पर (अमाशय के गड्ढे पर जहां से पसलियां अलग होती हैं) पड़े रहें। श्वासोच्छ्वास में 'समध्वनि' के पूर्णतः स्थिर हो जाने पर संकल्प करो कि प्रत्येक श्वास वातावरण के अपार भंडार से प्राण तथा संजीवन शक्ति अधिक मात्रा में खींच कर ज्ञान तन्तु प्रणाली में भर देगा तथा सूर्य ग्रन्थि' में संचित कर देगा। प्रति उच्छ्वास में संकल्प करो कि प्राण या संजीवन शक्ति सारे शरीर में; प्रत्येक अवयव तथा भाग में; प्रत्येक पेशी, कोष तथा अणु में; हर ज्ञान तन्तु रेषा, धमनी तथा शिरा में; अर्थात् सिर की शिखा से लेकर पांवों के तलुवों तक फैल रही है और वह प्रत्येक ज्ञान तन्तु रेषा को प्रफुल्लित, चैतन्य, बलवान तथा उत्तेज्जित कर रही है। वह हर एक ज्ञानतन्तु केंद्र में विद्युत भर कर सारे शरीर में शक्ति, पौरुष और विक्रम भर रही है। संकल्प करते समय प्रविष्ट होते हुए प्राण का भावना-चित्र-बनाने का प्रयत्न करो कि वह फेफड़ों में से होता हुआ 'सूर्य ग्रंथि' में तुरन्त संचित हो रहा है। उच्छ्वास में यह चित्र बनाओ कि वह शरीर के सब भागों में आपाद मस्तक तक फैल रहा है। संकल्प करने में बड़ा प्रयास करने की कुछ आवश्यता नहीं है। जो कुछ होना तुम चाहते हो, बस उसीका आदेश कर देना और फिर उस का भावना-चित्र बनाना आवश्यक है। बलात् संकल्प से भावना-चित्र युक्त शांत आदेश कई गुना अच्छा है। बलात

संकल्प शक्ति को केवल अनावश्यक खर्च कर देता है। यह अभ्यास बहुत उपयोगी है। इससे ज्ञान तन्तु प्रणाली बहुत प्रफुल्लित और शक्ति सम्पन्न हो जाती है। इससे सारे शरीर में आनन्द प्रद शांति आजाती है। थकावट तथा शक्ति-पात को दूर करने में यह विषेश लाभ दायक होता है।

शूल दमन—

लेटकर या सीधे बैठ कर 'समध्वनि' से श्वासोच्छ्वास करो और यह भावना करो कि तुम श्वास में 'प्राण' लेरहे हो। उच्छ्वास के समय प्राण को रुग्ण भाग में रक्त संचार तथा ज्ञान तन्तु प्रवाह पुनः स्थापित करने को भेजो। अनन्तर शूल को हटाने के हेतु अधिक 'प्राण' खींचो और छोड़ते समय यह भावना करो कि तुम शूल बाहर निकाल रहे हो। ऊपरोक्त दो मानसिक आदेशों को हेर फेर करदो और एक उच्छ्वास से रुग्ण भाग को उत्तेजित करो और अन्य से शूल को बाहर निकालो।

रक्त संचार अभिसरण—

लेट कर या सीधे बैठ कर समध्वनि से श्वासोच्छ्वास करो और उच्छ्वास के साथ हर किसी भाग में रक्त संचार को आदेश दो जहां तुम चाहते हो अथवा रक्त संचार की कमी के कारण व्याधि हो रही है। पांव ठंडे पड़ जाने पर

या सिर दर्द होने पर इसका बड़ा प्रभाव होता है। दोनों दशाओं में रक्त नीचे की ओर भेजा जावे जिस से पांव तो गर्म होवें और मस्तिष्क रक्त के अधिक भार से छुटकारा पावे। 'सिर दर्द' में पहिले "शूलदमन" प्रयोग करो, फिर रक्त नीचे की ओर भेजने की क्रिया करो। ज्योंही रक्त संचार नीचे की ओर होने लगेगा त्यों ही तुम्हें पांव बहुधा गर्म प्रतीत होंगे। रक्त संचार तो बहुत कुछ संकल्प के आधीन है और समध्वनि से श्वासोच्छ्वास कार्य को और भी सुगम कर देता है।

साधारण स्वचिकित्सा—

शरीर को ढीला करके लेटे हुए समध्वनि से श्वासोच्छ्वास करो और आदेश दो कि श्वास प्राण को यथेष्ठ मात्रा में खींच रहा है। उच्छ्वास के साथ प्राण को रुग्ण भाग में उत्तेजनार्थ भेजो। उच्छ्वास के साथ कभी कभी यह मानसिक आदेश कर दिया करो कि रुग्ण दशा बाहर आकर नष्ट हो जावे। इस प्रयोग में शरीर पर, सिर से रुग्ण भाग तक, हाथ फेरो। स्वचिकित्सार्थ तथा अन्य चिकित्सार्थ हाथों के उपयोग में सदैव यह मानसिक चित्र बनाओ कि प्राण, भुजा और अंगुलियों के छोरों से, नीचे की ओर शरीर में प्रवाहित हो रहा और रुग्ण भाग को पहुंच कर उसे आराम दे रहा है। यहां नाना रोगों के विवरण देते बैठना कठिन है परन्तु इस प्रयोग के थोड़े से

अभ्यास से और उपस्थिति के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन कर देने से आश्चर्यजनक परिणाम होंगे। कोई योगी रुग्ण भाग पर दोनों हाथ रख समध्वनि से श्वासोच्छ्वास करते और यह भावना रखते हैं कि वे मानो पंप द्वारा रुग्ण भाग या अवयव में प्राण भर रहे और उसे उत्तेजित कर दूषित कणों को (पीड़ा को) बाहिर निकाल कर फेंक रहे हैं, जैसे कोई मैले पानी के घड़े में स्वच्छ पानी ठेलकर मैला पानी बाहर निकाल देते हैं। यदि मानसिक चित्र ठीक हुआ तो इस प्रयोग का बड़ा प्रभाव पड़ता है। श्वास लेना मानो मुठिया उठाना और उच्छ्वास छोड़ना मानो यथार्थ दवाना है।

स्वयं विद्युतान्वित करना—

यदि तुम्हें जान पड़े कि तुम्हारी संजीवन शक्ति शिथिल हो रही है और तुम्हें नवीन सामग्री संचित करने की शीघ्र आवश्यकता है तो पावों को मिला कर पास रखना और जिस रीति से सुभीता हो उसी रीति से हाथों की अंगुलियों की बिठ्ठी बांधलेना सबसे उत्तम उपाय है। यह मानों वृत को बन्द कर देता और छोरों से प्राण का निकलना पूरा रोक देता है। अनन्तर 'सम ध्वनि' से श्वासोछ्वास करो। तुम्हें इस तरह विद्युतान्वित करने का प्रभाव तुरन्त प्रतीत होगा।

मस्तिष्क उत्तेजन—

स्वच्छ विचार और तर्क उत्पन्न करने के हेतु मस्तिष्क के कार्य को उत्तेजित करने में योगियों का खोजा हुआ

निम्न अभ्यास अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। मस्तिष्क और ज्ञानतन्तु प्रणाली को स्वच्छ करने में इसका आश्चर्य-जनक प्रभाव पड़ता है। मानसिक श्रम करने वालों के लिये यह बड़ी काम की वस्तु है। इस से उनके दोनों काम सध जावेंगे। इससे उनमें अधिक अच्छा काम करने की शक्ति आवेगी और कठिन मानसिक परिश्रम के उपरान्त उनका मन प्रफुल्लित और स्वच्छ हो जावेगा।

रीढ़ को-मेरुदंड को- सीधी रख कर ठीक बैठ जाओ, आंखें ठीक सामने और हाथ पांव पर रहें। समध्वनि से श्वासोच्छ्वास करो परन्तु दोनों नथुनों से न लेकर अंगूठे से बांये नथुने को दबाओ और केवल दाहिने नथुने से श्वास लो। फिर अंगूठा उठालो और अंगुली से दाहिना नथुना बन्द कर वांये नथने से उच्छ्वास छोड़ो। फिर अंगुली को न उठा कर वांये नथने से श्वास लो और अंगुली उठा कर दाहिने नथने से उच्छ्वास छोड़ दो। फिर दाहिने नथने से श्वास लो, वांये से उच्छ्वास छोड़ो और इसी ढंग से श्वा-सोच्छ्वास क्रमशः दाहिने वांये नथुनों से करते रहो। योगियों की श्वासोच्छ्वास की यह सबसे प्राचीन रीति है। यह पूर्ण महत्वशोल और बहुमूल्य है। यह शक्ति प्राप्त करने के लिये ठीक उपयुक्त है।

योगियों का महान अध्यात्मिक श्वासोच्छ्वास-

योगी लोग प्राणायाम का बहुधा अभ्यास किया करते हैं। यह शब्द संस्कृत है। इसका अपर नाम ऊपर लिख

दिया गया है। यह बात अन्त में लिखी गई है क्योंकि विद्यार्थी को मानसिक शक्ति और समध्वनि के श्वासोच्छ्वास को प्राप्त करने लिये अभ्यास की आवश्यकता है। प्राणायाम के साधारण सिद्धान्तों के सम्बन्ध में प्राचीन हिन्दू कथन संक्षेप में यह है :-

" जो योगी अपनी अस्थियों द्वारा श्वासोच्छ्वास कर सके सो ही धन्य है " इस अभ्यास से सारा शरीर 'प्राण' से परिपूर्ण हो जावेगा और विद्यार्थी की प्रत्येक अस्थि, पेशी, ज्ञानतन्तु, कोष, स्नायु, अवयव और भाग शक्तिमय हो जावेंगे। वे सब प्राण के साथ तथा श्वासोच्छ्वास की 'समध्वनि' के साथ तन्मय हो जावेंगे और सारा शरीर स्वच्छ सुथरा होजायगा। जो इसका सावधानी से अभ्यास करेगा उसे प्रतीत होगा कि उसने मानों नवीन कलेवर प्राप्त किया है अर्थात् आपादमस्तक उसकी नवीन रचना होगई है ।

अभ्यास का क्रम निम्नानुसार होगा :—

(१) पूरे सुभीते से शरीर को ढीला करके लेट जाओ।

(२) जब तक समध्वनि पूर्णतः स्थापित न हो जावे तब तक समध्वनि से श्वासोच्छ्वास करते रहो।

(३) श्वास और उच्छ्वास करते हुये यह मानसिक चित्र बनाओ–भावना करो—कि वायु पांव की हड्डियों में से ऊपर चढ़ रही और फिर नीचे जा रही है। इसी तरह भुजाओं में, खोपड़ी में, अमाशय में, जनने-

द्रियों में संचारक कर रही है। उपरान्त मेरुदंड में ऊपर चढ़ने और नीचे जाने की भवना करो। चर्म के प्रत्येक रंधूसे श्वास आने और उच्छ्वास जाने की भावना करो और समझो कि सारा शरीर प्राण तथा जीवन से परिपूर्ण होगया है।

(४) समध्वनि से श्वासोच्छ्वास कर सप्त संजीवनकेन्द्रों में क्रमशः पूर्ववत मानसिक भावना करते हुए प्राण धारा भेजो। वे केन्द्र ये हैं:—

(अ) सिर का अग्र भाग (कपाल)
(आ) सिरका पिछला भाग (ग्रंथि)
(इ) मस्तिष्क की तली
(ई) सूर्य ग्रंथि
(उ) कूलोंका मध्यभाग (मेरुदंड का नीचे का भाग)
(ऊ) नाभी के आसपास
(ए) जननेंद्रिय

अन्त में सिर से पांवों तक कई बार इधर उधर प्राणधारा को पहुँचाओ।

———

ग्यारहवां अध्याय

विचार बल से चिकित्सा

यथार्थ मानसिक चिकित्सा के विविध रूपों का वर्णन करने के पहिले एक बहुत प्रभावशाली चिकित्सा के रूप का परिचय देदेना ठीक है। इसका स्थान प्राण चिकित्सा आर मानसिक चिकित्सा के मध्य में है। यह रूप कई नामों से विख्यात है परन्तु यहां विचार बल से चिकित्सा नाम देना ठीक समझा गया है। इससे इसका वर्णन अच्छी तरह हो जाता है क्योंकि इसमें विचार और प्राण का प्रयोग होता है। विचार प्राण को अपने रंग में रंगदेता और जीवित शक्तिवत प्रसार करता है। यह 'विचार-बल' चिकित्सा का साधन बनाया जा सकता है। कई योग्य चिकित्सकों ने इसकी सरलता और सामर्थ्य के कारण अन्य साधनो की अपेक्षा इसको अधिक पसन्द किया है।

इसका प्रयोग पृथक भी हो सकता और इस पुस्तक में अन्यत्र दर्शाये हुये अन्य साधनो के संयोग में भी हो सकता है। यथार्थ में अच्छे अच्छे अध्यात्मिक चिकित्सा वाले सब रीतियों के अंशों को काम में लाते और रोगी की विविधि आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये उसे ही अनुकूल कर लेते हैं। साधनो के जो जो अंश उनका

और रोगी को 'अत्यन्त स्वाभाविक' जान पड़ते, वे उन्हें अधिक पसन्द करते हैं।

विचार बल से चिकित्सा का आधार इस तथ्य पर है कि अवयव, भाग, शरीर के सूक्ष्म कोष कण भी 'अन्तर-संज्ञा' से संपन्न हैं। यह सब रहस्य मर्मज्ञों को विदित है और आधुनिक विज्ञान भी पूरी तरह से इसे मानता है। कोषों की, कोष समूहों की, ज्ञानतन्तु केन्द्रों की, ग्रंथियों का, आदि की 'अन्तर संज्ञा' बाहर से आये हुए बलवान विचार को, विशेषतः प्राण संपन्न विचार का, मानती है। संस्कार जनित बुद्धि के द्वारा जाने के बदले भागों में इस तरह शक्ति की पहुंच एकदम हो जाती है। यथार्थ मानसिक चिकित्सा में माध्यम का सहारा लेना पड़ता है। जब इसका यथोचित प्रयोग किया जाता है तो इस चिकित्सा से आश्चर्यजनक, शीघ्र, और एक दम प्रभाव पड़ता है। साधारण आध्यात्मिक उपचारों में यही अत्यन्त साधारण और उत्तम है। सीखने वाला इससे सुपरिचित हो जावे।

विचार बल से चिकित्सा के सिद्धान्त का मर्म यही है कि बीमारी एक मानसिक व्यथा है। चाहे केन्द्रिय मन में व्यथा नहो किन्तु खंड 'मन' पीड़ित हो। उपचार का सिद्धांत है कि 'विचार-बल' कोषों में और भागों में पहुँच उपद्रवी मन का दमन कर उसे स्वाभाविक कार्य पुनः करने में लगा देता है।

इस चिकित्सा में अपने मन से 'भौतिक पिंड' के सर्व भावों को दूर करदो। तुम 'भौतिक पिंड' पर मन का प्रयोग नहीं कर रहे हो परन्तु मनका मन ही पर कर रहे हो। शरीर के 'इच्छा-मन' (विराटमन) का प्रभाव कोष मन पर डालते हो। इसे मत भूलो क्योंकि उपचार का मुख्य आधार यही तथ्य है। यह याद रखो कि चिकित्सक भागों में स्थित उपद्रवी मन के पीछे पड़ जाता है। भागों में स्वाभाविक मनः स्थिति उत्पन्न करने अथवा पुनः स्थापित करने से रुग्ण दशा लुप्त हो जाती है।

चिकित्सक अपना विचार वल भाग-स्थित-मन को प्रेषित करता और यथार्थ शब्दों का उच्चारण कर और उससे मानसिक संभाषण कर उसे निर्दिष्ट आदेश देता है। वह मनन करता या कुछ ऐसा बोलता है कि हे मन, तुम अब बुरा बर्ताव कर रहे हो, तुम्हारा कार्य एक उदंड लड़के के समान हो रहा है, तुम्हें इससे अधिक अच्छी तरह काम कराना ज्ञात है और मैं आशा करता हूं कि तुम अब से अधिक अच्छा काम करोगे। तुम्हें करना ही चाहिए और तुम अधिक अच्छी तरह से करो ही गे। तुम्हें स्वाभाविक और स्वास्थ्य की दशाएं ले आना चाहिए। ये अवयव तुम्हारे सिपुर्द हैं और मैं आशा करता हूं कि तुम उस काम को ठीक करोगे जिसे 'विराट मन' ने तुमको दिया है। इससे

और ऐसे ही विचारों से उपचार की धारणा तुम्हें हो जावेगी। जो कुछ कराना तुम चाहो ठीक वही काम भाग - स्थित - मन को दर्शा दो।

तुम्हें यह देख कर आश्चर्य होगा कि कोष - स्थित - मन ने इतनी तत्परता के साथ तुम्हारी आज्ञा मानली। भाग-स्थिति - उदंड - मन क्षुब्ध, अनमने अथवा विचलित बच्चे के समान काम करता है। उसे आवश्यकतानुसार मनाकर, धमका कर, या प्यार दिखला कर ठीक काम करने में लगाना चाहिए। निसन्देह प्रेम का भाव सब उपायों के साथ रहे जैसा कि बच्चे के साथ में रहता है। बच्चों के मन के समान कोष - गत - मन मुख्यतः अप्रौढ़ रहता है और यदि तुम इस भाव को लिये रहोगे तो तुम इस उपचार से उत्तम लाभ उठा सकोगे। जिस तरह मनुष्य का ध्यान आकर्षित करने के लिये हम उसे कंधे आदि पर थपकी देते हैं उसी तरह कोष या भाग - स्थिति - मन का ध्यान खींचने की अभिलाषा से इस उपचार में हाथों का उपयोग किया जाता है। कोष - गत - मन का ध्यान जागृत करो और तुम देखोगे कि तुम्हारे आदेश सावधानी से माने जा रहे हैं।

जैसे भिन्न भिन्न बच्चों में भिन्न भिन्न गुण होते हैं वैसे ही अवयवों के मन भी भिन्न गुण रखते हैं। उदाहरणार्थ हृतपिंड बहुत बुद्धिमान है,

और केंद्रिय मन के आदेशों का उत्तर तुरन्त देता है। इसके विपरीत कलेजा एक मूर्ख तथा मंद मानसिक यंत्र है। इसको खच्चर के समान हांकने की आवश्यकता है न कि मेमने के समान रास्ता दिखाने की। ठीक इस प्रकार के अड़ियल बच्चे तुमने देखे होंगे। इसको अपने मन में सदा रखो। तुम्हें सिद्धांत तो अवगत हो गया अब इसका व्यवहारिक उपयोग लिखा जावेगा।

<u>व्यवहार– अमाशय की पीड़ाएं</u> – कई रोगों का मूलस्थान अमाशय ही है। अन्य पीड़ाएं तो मानो अमाशय की मुख्य पीड़ा के परिणाम हैं। अतएव अमाशय के उपचार से ही सदा प्रयोग आरंभ करना ठीक है। अनपच और दूषित पोषण नाना रोगों की जड़ है। प्रति दश में से नौ रोग इसी से होते हैं। कारण को हटाओ और लक्षण नष्ट हो जावेंगे।

इसी पीड़ा में मन को साधने की यह पद्धति है—

या तो रोगी को अपने सामने सीधा खड़ा रखो या उसे चित लिटादो। अमाशय पर हाथ से मधुर थपकियां जल्दी जल्दी देते हुये कहो "मन, चैतन्य होओ" फिर दाहिने हाथ की हथेली अमाशय पर रखके कहो "हे अमाशय-स्थित–मन! अब मैं चाहता हूँ कि तुम उठो और इस अवयव पर ठीक ध्यान दो। तुम ठीक काम नहीं कर रहे हो। तुम अपने काम में आना कानी कर रहे हो। मैं चाहता

हूं कि तुम अपने कार्य ठीक ठीक करो और अवयव को सबल, सस्वास्थ्य और चैतन्य बनाओ। मैं चाहता हूँ वह अपना काम ठीक करे और तुम्हें देखना चाहिये कि वह ऐसा ही करता है। तुम्हें देखना चहिये कि वह भोजन को बराबर पचाकर सारे शरीर को पोषण पहुँचाता है। तुम्हें भीड़-जमाव–तथा सुस्ति को छोड़ना चाहिए और देखना चाहिये कि पूरा अवयव सजीव और सशक्त होकर काम भली प्रकार करता है"। इन्हीं शब्दों को रटने की आवश्यकता नहीं। तुम इन में घटा बढ़ी कर सकते हो। मुख्य बात तो यही है कि अमाशयस्थित मनसे जो कुछ काम तुम कराना चाहते हो सो उसे स्पष्ट कह दो। तुमको आश्चर्य होगा कि वह बुद्धि लड़ाकर कितने शीघ्र तुम्हारे आदेशों को मानने लग जाता है।

ये उपचार प्रति दिन करो। यह लगभग पांच दस मिनिटों तक होता रहे। अनपच के उदाहरणों में अंतिम परिणाम पाने में बहुधा एक से चार हफ्ते तक लग जाते हैं। यह देरी पीड़ा की अवधि से और रोगी की मानसिक दशा से होती है। यदि वह तुम्हारे अनुकूल हो तो एक हफ़्ते में अच्छा हो जाता और प्रतिकूल हो तो अधिक समय लग जाता है। इसी तरह अन्तर पड़जाता है।

कलेजे की पीड़ाएं— आमाशय के समान कलेजे का -यकृतपिंड का – उपचार करो; किन्तु कलेजा मंद एवं मूर्ख अवयव है अतः तेजी और निश्चय से आदेश देना चाहिए। इस की भावनार्थ तुम थोड़ा उदंड खच्चर का ध्यान करलो। यह लातों का देव बातों को नहीं मानता इसको तुम मान नहीं सकते। इसे तो खच्चरवत पीट कर हकालना पड़ता है। कलेजा कहने से हमारा अभिप्राय बहुत मन का है। कलेजे को ठीक काम करने का और पर्याप्त पित्त तैयार करने का आदेश देओ। यह कहो कि अधिक पित्त मत निकालो और उसे ठीक प्रवाहित कर यथा स्थान पहुँचा भली भांति अपना काम करने दो; इत्यादि।

बद्ध कोष्ठ— प्रथम कलेजा का उपचार करलो, फिर आंतों पर हाथ लेजाओ और कहो "हे आंतों के मन जगो, अपने कर्तव्य पर ध्यान दो, स्वाभाविक एवं सरल गति करो जैसा कि तुम जानते हो कि तुम्हें करना चाहिए। गुदा भाग में सिकुड़न होने से यह रोग कभी कभी कठिन हो जाता है। (दीर्घ आंतों का वह भाग जहां मल एकत्र होता और पेशियों की गति से बाहर आता है। ऐसी अवस्था में उस भाग पर हाथ रक्खो (कपड़े हटाने की आवश्यकता नहीं) और ध्यान आकर्षित करने को उसे दबाओ और कहो "खुलो, खुलो, तुम पीड़ा पहुँचा रहे

हो। पेशियों को ढीला करो और स्वभाविक तथा स्वतंत्र गति होने दो"।

अतिसार– बद्ध कोष्ठ के समान ही उपचार होता है। उन्हीं अवयवों को पुकारा जाता है; निःसंदेह आदेश के शब्दों को विपरीत करना पड़ता है। आंतो से थोड़ा मंद होने को और कलेजे से ठीक वर्ताव करने को कहा जाता है।

गुर्दे– कलेजे के समान ही गुर्दों–वृकों–का भी उपचार होता है। अंगुलियों से फुर्ति के साथ कुछ देर उन्हें थपकियां दो और उनसे अपना काम ठीक और स्वाभाविक रीति से करने को फिर कहदो। यदि रोगी को अधिक पेशाव होती हो तो गुर्दों और मूत्राशय को थोड़ा मन्द होने को और धीरे धीरे पेशाव कम करने को कहदो। मानलो की रोगी को रात्रिमें तीन बार पेशाव करने की वान है तो धीरे धीरे पहिले दो बार, फिर एक बार और अन्त में सोने के समय से जागने तक कुछ नहीं हो। प्रति दिन पांच दस मिनिटों तक इस तरह उपचार करो। अधिक पेशाव के लिये महीने भर तक उपचार करो और मूत्राशय पर ऊपर की ओर हाथ फेरते हुए यह मानसिक भावना करना कि तुम प्रवाह को ऊपर ठेल रहे हो, अच्छा उपाय है। नियमित उपचार करके अतिसार में भी इस तरह ऊपर की ओर हाथ फेरना लाभ दायक है।

गठिया वात :- इसका उपचार दो रीतियों के मेल से होता है। पहिला उपचार तो गुर्दों पर किया जाता है। उनसे कहा जाता है कि तुम दूषित कणों का और मूत्रखार को रक्त संचार से शोष कर शरीर के बाहर निकाल कर फक दो। शरीर में इनका जमाव ही इस रोग का मूल कारण है। इसी मूल कारण को दुरुस्त कर देने से अच्छा परिणाम होगा और पीड़ा का पुनः होना रुक जावेगा। साथ ही साथ रुग्ण भाग टटोले जावें और उन से मूत्रखार को फेंक कर बाहर करने को तथा इस काम के लिए संकुचित होने को कहा जावे। अमाशय का भी उपचार करो क्यों कि बहुत कुछ मूल पीड़ा दूषित पोषण और पचन से उत्पन्न होती है।

हृदय की पीड़ाएं- यह अवयव सबों से अधिक दत्त अर्थात् उसमें अन्य अवयवों की (निसन्देह मस्तिष्क का छोड़ कर) अपेक्षा अधिक ऊंची श्रेणी का मन है। यह हृदय-गत मन अत्यन्त सभ्य और दयालु होने से तुरन्त स्नेह युक्त मधुर बातों को मान लेता है। यदि उसकी धड़कन अनियमित हो तो भाग पर सौम्यता से हाथ रख कर मंजुल वाणी कहो "हे हृदय-गत मन शान्त हो, शांत, शांत, शांत,- नियमित रूप से और शांतता से काम करो- दृढ़ता, दृढ़ता, दृढ़ता धारो, इत्यादि"। तुम देखोगे कि

धड़कन शांत हो जावेगी और हृदय का कार्य स्थिर एवं नियमित हो जावेगा।

ज्ञानतन्तु रेषाएं- इन पीड़ाओं का उपचार इस तरह किया जावे। अमाशय और कलेजा का उपचार आरम्भ करो और उन्हें ठीक काम करने में लगाओ। फिर मेरुदंड के आस पास की रेषाओं का उपचार, आवश्यकतानुसार उचित आदेश देते हुए, करो।

रक्त संचार को सम गति शील करना- यह काम पूर्व अध्याय में दिये हुए आदेशों के अनुसार सिर से पावों तक लम्बे सपाटे से हाथ फेरने से हो जाता है। साथ साथ धमनी और शिराओं के मन को यह कह दो कि स्वतंत्रता से बराबर गति से स्थिर और निरंतर बहो, बहो, रक्त संचार करो, बहो, इत्यादि।

प्राय: प्रत्येक उपचार में रक्त संचार की समगति विशेष ध्यान से स्थापित की जावे क्योंकि इसके करने से स्वाभाविक दशाएं पुनः स्थापित होंगी और स्वास्थ्यकार्य में बढ़ती होगी।

सिर पीड़ाएं- पहिले अमाशय का उपचार किया जाता, फिर रक्त संचार समगति शील किया जाता और फिर सिर का स्थानीय उपचार करने को तद्गत मन को

कहा जाता है "अब शांत हो जाओ; शांति, शांति, शांति, विश्राम, विश्राम, विश्राम, इत्यादि।

स्त्रियों की पीड़ाएं— इन पीड़ाओं में पहिले अमाशय को ठीक स्थिति में लाने का उपचार किया जाता है जिससे रोगी का ठीक पोषण हो और उसे बल और फुर्ती प्राप्त हो कि वह रुग्ण भागों में पोषण पहुँचा सके। इसमें आनाकानी न की जावे। अतिसार की दशा में स्थानीय उपचार किया जाता है। पोधे पर हाथ रख कर तद्गत् मन को आदेश दो 'शक्ति, उचित कार्य, स्वास्थ्य इत्यादि' अधिक स्राव की दशा में ये शब्द और कह दो "मंद होओ, स्राव बंद करो; इत्यादि" गर्भपात आदि दशाओं में आदेश करो "दृढ, दृढ, अब दृढ़ता धारो; इत्यादि" इससे बलप्रद प्रभाव आश्चर्यजनक दीखेगा।

अन्य व्याधियां—प्रायः सब रोग अयोग्य तथा अपूर्ण 'मानसिक कार्य' के भिन्नरूप हैं। उन सबों को यहां देने की कुछ आवश्यकता नहीं। प्रत्येक उपचार एकसा ही है जैसा कि तुम देख चुके हो। सामान्य उपचार करके दशा के अनुसार शब्दों में आदेश दो। भाग-स्थित मन को कहदो कि उसे क्या करना चाहिये। उसके साथ वैसी ही बात चीत जैसी तुम किसी असावधान बालक से करते हो करो। उसके साथ तर्क करो और उसे आगे आगे लेचलो या हांको, जैसा उत्तम हो। थोड़े विचार और निर्णय से काम लो तो तुम्हें दीखेगा

कि तुम शीघ्र ही ठीक योग्य आदेश देने की युक्ति पाजा-ओगे ।

सबसे मुख्य बात यही याद रखो कि तुम अवयव के मन से बातचीत करते हो न कि जड़ पिंड से । जीवित शरीर में कुछ भी मृतक - जड़ पदार्थ नहीं है; प्रत्येक अव-यव और कोष में मन - चैतन्यता - है । अतएव मन, मन से संभाषण करता है । यही बात याद रहे क्योंकि इस उपचार का यही तो रहस्य है ।

यह भी याद रहे कि बहु संख्यक रोग आमाशय की पीड़ाओं से और अपूर्ण रक्त-संचार से होते हैं । अतएव आमाशय को स्वाभाविक स्थिति में लाने से और रक्त-संचार की गति और कृति बराबर होने से पीड़ा का मुख्य कारण दूर हो जाता है । इसे मत भूलो क्योंकि यह अत्यन्त महत्व की बात है ।

जिसका उत्तम प्रभाव पड़े वही बात तुम 'मन' से कहदो । मानो वह एक मनुष्य या बालक ही हो । थोड़े से अभ्यास से तुम निपुण हो जाओगे और भिन्न भागों के भिन्न 'मनों' से परिचित हो जाओगे । इस के सिवाय वे भी समझ जायेंगे कि तुम उनको जानते हो; ठीक वैसा ही जैसा कि घोड़ा 'अश्व-विद्या' पारंगत मनुष्य को जान लेता है यद्यपि उसने उस विशेष मनुष्य को पहिले कभी

न देखा हो। कुत्ते भी प्रायः ऐसे ही होते हैं। इस उपचार का प्रयोग मनुष्य और अन्य प्राणियों पर हो सकता है।

कोपगत या अवयवगत मन तुम्हारे उच्चारित शब्दों को नहीं समझते हैं। उन्हें ऐसा कोई ज्ञान नहीं पर वे शब्दान्तर्गत भाव को अवश्य समझते और तदनुसार कार्य करते हैं। शब्द तो तुम्हें अपना भाव स्पष्ट करने में सहायता मात्र देते हैं। शब्द तो भावों के संकेत हैं। प्रत्येक शब्द में एक या अधिक भाव रहते हैं। अब समझे? एक बंगाली, मद्रासी का उपचार कर सकता है यद्यपि वह उसका एक भी शब्द नहीं समझ सकता है परन्तु कोष – गत मन शब्द के भाव ग्रहण करलेता है; चाहे वह किसी भी भाषा में बोला गया हो।

यह आश्चर्य नहीं है क्या? इसका मुख्य मर्म 'भाव' है न कि 'शब्द'; यद्यपि वह-उच्चरित शब्द-मन को भाव बनाने में सहायता देता है। याद रखो कि हम शब्दों ही के द्वारा सोचते हैं। हम शब्दों ही में स्वप्न देखते हैं।

उपचार का यह सरल ढंग तुम्हारे ध्यान से हट न जावे। यही सब से उत्तम है क्यों कि इस में अन्य कई उपचारों के गुण समाविष्ट हैं। यह इतना सरल है कि सुगमता से समझ में आजाता और प्रयोग में लाया जा सकता है। इसकी परीक्षा करने को मत चूको। इसका अभ्यास अवश्य करो।

निजोपचार

कोई भी इस उपचार को अपने ही पर करके उत्तम परिणाम पा सकता है। केंद्रिय मन कोष-गत अथवा अवयव-गत मन को आदेश देता है; मानों किसी दूसरे पुरुष का उपचार कर रहा हो। ढंग प्रायः एक से ही रहते हैं। यथार्थ में, अपने पर करके ही इसका ठीक अनुभव हो सकता है।

वही बातों को लिख कर पिष्ट पेषण करके किताब को वढ़ाने से क्या लाभ? हमारा ध्येय तो संक्षेप में उत्तमोत्तम सूचनाएं दे देना है। एक एक अध्याय में बहुमूल्य सूचना है जिसको मान कर तदनुसार अभ्यास करके कई लोग रुपया कमा लेते हैं और कमा रहे हैं। इस पुस्तक के अध्यायों में जो सूचनाएं दी गई हैं उनसे बाजारू दलालों अथवा रुपया कमने वालों की सूचनाओं में कुछ भी अधिक नहीं है। यहां संक्षेप में सब कुछ कथन कर दिया गया है। ऐसा लिखने से हमारा किसी की निन्दा अथवा आत्म-प्रशंसा करने का आशय नहीं है।

अध्याय बारहवां

सूचना-उपचार

यह उपचार सहजात मन पर होने वाले मानसिक शासन के प्रभाव पर अवलंबित है। जैसे अपनी या अन्य की विपरीत सूचानाएं शरीर में अस्वाभाविक दशाएं सह-जात मन द्वारा उत्पन्न कर देती हैं वैसे अपनी या अन्य की अनुकूल सूचनाएं स्वाभाविक दशाएं ला सकती हैं।

शरीर पर होने वाले मानसिक दशाओं के प्रभाव से भौतिक वैज्ञानिक तथा दिव्य-दृष्टि संपन्न और परीक्षक सुपरिचित हैं। यहां कुछ उदाहरण देने से इस उपचार का तथ्य तुम्हारे ध्यान में आजायगा।

विख्यात मनोविज्ञानवेत्ता महामाहोपाध्याय जेम्स का कथन है कि "यथार्थ में ऐसी कोई चेतनता, चाहे वह वेदना, ज्ञान या संकल्प हो, नहीं है जो सीधी अपने आप कुछ सक्रिय प्रभाव प्रकट करना न चाहती हो। यह सदा आवश्यक नहीं है कि यह प्रभाव बाहर प्रकट हो। यह केवल हृदय की धड़कन में या रक्त संचार की गति में परिवर्तन करके रोमांच उत्पन्न कर दे या चेहरे का रंग उड़ा दे। यदि चेतनता है तो वह चाहे जिस रूप में रहती है और मनो विज्ञान का यह विश्वास है कि चेतन क्रियाओं का परिणाम व्यक्त या अव्यक्त गति में होता है।"

वेन का कथन है कि " संताप, कष्ट, व्यथा आदि के आघात के कारण कई लोगों की मृत्यु हो गई या मानसिक स्थिति विचलित हो गई है। यह सब सामान्य नियम के अनुकूल ही होता है।"

डारविन का कथन है कि " दीर्घ काल के संताप से रक्त संचार मंद पड़जाता, चेहरा पीला हो जाता, पेशियां शुष्क हो जाती, पलकें गिर जाती, सिर सिकुड़ेहुए वक्ष-स्थल पर लटक जाता, ओंठ, कपाल और नीचे का जबड़ा आदि सब नीचे बैठ जाते हैं। प्रफुल्लित मनुष्य का सारा दृश्य दुःखित मनुष्य से सर्वथा विपरीत होता है।"

आलसटन का कथन है कि " यदि शरीर का यह साधारण नियम हो कि आमोद, प्रमोद, आशा, प्रेम और स्वास्थ्य एवं सुख की कामना स्नायु बढ़ाती, शरीर के अवयवों को बलवान बनाती और इस तरह साधारण स्वास्थ्य उत्पन्न करती हैं तो भय, उदासीनता, ईर्षा, घृणा निराशा, अविश्वास और अन्य मानसिक दुरवस्थाएं अवयवों में रक्ताभाव और क्रियाओं में मन्दता लादेती हैं। पाठकों के मन में उत्साह भरने को इन महत्व की बातों के बारे में जितना कहा जावे सो सब थोड़ा ही है।"

फ्लामसेरियन का कथन है कि "भाव, चित्त पर जमा हुआ विचार या मानसिक क्षुब्धता जब निपट अन्तरिक होती है तब अन्य दिशा में कुछ कम बढ़ शारीरिक प्रभाव प्रकट

कर सकती या मृत्यु तक उत्पन्न कर सकती हैं। क्षोभ से कई मनुष्यों की अचानक मृत्यु हो गई है। कल्पना का आतंक जीवन पर दीर्घ काल से छाया हुआ है। एक डाक्टर की परीक्षा में इसी तरह एक मनुष्य की मृत्यु हो गई थी। गत शदी की यह घटना सर्व विदित है। परीक्षा करते समय वह मनुष्य मेजके साथ जकड़ कर बांधा गया, उसकी आंखों पर पट्टी चढ़ा दी गई और उससे कह दिया गया था कि उसके गले में नस्तर लगा कर उसके शरीर का सारा रक्त निकाल लिया जायगा। इसके उपरान्त सूर्वी से उसका चमड़ा टोंचा गया और उसके सिर के पास रबर की नली लगा कर उसके द्वारा पानी की धार इस तरह छोड़ी गई कि वह उसके गले पर से होती हुई धीरे धीरे बरतन में गिरती रही। छः मिनट में वह दंडित मनुष्य यह समझ कर कि शरीर से कम से कम पांच छः सेर रक्त बह गया है, भय के मारे मर गया"।

मौडस्ले का कथन है कि "क्षोभ निःसंदेह पोषण में वृद्धि, रुकावट या विचलता ला सकता और रसों के स्त्राव में भी घटा बढ़ा कर परिवर्तन कर सकता है। न केवल वाहिनियों को फैला कर या सिकुड़ा कर यह काम करता है जैसा कि लज्जावश संकोच में और भय वश रोमांच में दृष्टिगोचर होता है; वरन ज्ञान तन्तु रेषाओं द्वारा भागों के केन्द्रिय तत्वों पर आक्रमण करता है। इन रेषाओं का

अन्त कभी कभी पदार्थ में तांते से होता है जैसा कि आधुनिक खोजों से प्रतीत हुआ है। यह कल्पना करना तर्क हीन नहीं है कि मन शरीर के व्यक्तिगत तत्वों पर अपनी छाप जमाकर उनमें आशा तथा शक्ति का अथवा निराशा तथा दुर्बलता का संचार कर देता है"। डार्विन ने भी शारिरिक क्रिया पर विशेषतः रक्त संचार पर होने वाले दुःख प्रभाव का वर्णन किया है। यदि दूर हों तो घर की चिन्ता शरीर के यथोचित कार्य को विचलित कर देती है। सु समाचार पाचन में बृद्धि करते और कुसमाचार घटती करते हैं। घृणित दृश्य से जी मचलाता है।

सर सेमुअर वेकर का कथन है कि कोई भी महा दुःख या क्रोध अफ्रिका के कुछ भागों में बहुधा ज्वर अवश्य उत्पन्न करता है।

सर रिचार्डसन का कथन है कि अचानक मानसिक वेदना से होने वाला प्रमेह ठीक शारीरिक पीड़ा के ढंग का अर्थात् यथार्थ रोग के समान होता है।

सर जार्ज पेगेट का कथन है कि "बहुत से लोगों को देखने से मेरा विश्वास जम गया है कि फाड़ों का मुख्य कारण दीर्घ काल की चिन्ता ही होती है"।

मुर्चीसन का कथन है कि मुझे बहुधा यह देख कर कितना आश्चर्य हुआ है कि कलेजे के प्रथम स्फोट-फोड़े का कारण दीर्घ काल तक दुःख या चिन्ता का होना स्पष्ट हुआ। यहीं बात कई रोगियों में पायी गई।

कई वैद्यों – डाक्टरों – का कहना है कि स्फोट विशेषतः मूत्राशय (पथरी) या वक्षस्थल (स्तन पाठा) में होने का मूल कारण मानसिक चिन्ता है। कई पिलीया रोग का कारण भी यही बताते हैं। बहुत से मानसिक वेदना एवं चिन्ता को रक्त न्यूनता का कारण मानते हैं।

रिचार्डसन का कथन है कि "अधिक मानसिक परिश्रम से चमड़े पर खरोंचे पड़ जाते हैं। इन सब मे यथा मृगी मे और मानसिक धुन में सदा कुछ न कुछ कारण (मानसिक व्यथा) पहिले से ही स्थित रहती है। यह विचारणीय है कि मानसिक प्रभावों की दृष्टि से शारीरिक रोगों के प्रश्न का अध्ययन इतना कम किया गया है"।

एमर गेट्स का कथन है कि क्रोधयुक्त, अहितकर और निराशाजनक क्षोभ शरीर में हानिकारक एवं अत्यन्त विषैले रसायन उत्पन्न कर देते हैं किन्तु अनुकूल सुखदायक वृत्ति पुष्टिकर रसायन उत्पन्न करती है जिससे शक्ति उत्पन्न करने की कोषों को उत्तेजना मिलती है"।

"शरीर का मन पर प्रभाव" नामक पुस्तक में महा-महोपाध्याय तुकेने भय, संताप या त्रास जनित अनेकों रोगों के उदाहरण दिये हैं; जिनमें मुख्य विक्षिप्तता; पागल-पन, भिन्न पेशियों या अवयवों में लकवा, अतिशय पसीना निकलना; हैजे सदृश दस्त कय होना; कलेजे का विकार, बालों का भूरा पड़ना, गंजापन; दांतों का नष्ट होना,

शक्तिपात से भयानक रक्त की कमी होना; गर्भपात या मूत्राशय में पीड़ा होना; चर्मरोग, खाज, फोड़े, इत्यादि हैं। उनका कहना यह भी है कि विशेषकर संक्रामक रोग भय के प्रभाव से ही फैलते और लोग अधिक बीमार हो कर मरते हैं। पहिले लोगों में डर होने ही से हैजा, प्लेग आदि रोगों का फैलना माना गया है।

महामाहोपाध्याय मासो का दावा है कि भय से ही धनुर्वात, बेढंग कंप, मसूड़ों का रोग, मृगी - अपस्मार- इत्यादि होते हैं।

कई लेखकों ने यह दावा किया है कि भय ही बहुत कुछ अन्श में किसी न किसी तरह से सब शारीरिक रोगों या पीड़ाओं का मूल कारण हैं। यद्यपि यह अतिशयोक्ति जान पड़े तथापि इस कथन में सत्यांश बहुत कुछ है।

उपरोक्त कथनो से यह निष्कर्ष निकलता है कि भय को दूर करने की किसी भी पद्धति से रोग को हटाने में बड़ा प्रभाव पड़ेगा। और बात यही होती है। प्रायः सब प्रकार की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा में रोगी में नवीन मानसिक विचार और दशा उत्पन्न की जाती हैं। भय को हटा कर विश्वास, साहस, निर्भयता और आशा का संचार किया जाता और शरीर सुधरने लगजाता है। मुख्य सिद्धांत यह है कि " विचार कार्य का रूप धारण करता

है," और " जैसा मनुष्य अपने हृदय में सोचता है, वैसा वह वन जाता है "।

साधारण सूचना से न केवल सारे शरीर को लाभ होता है वरन विशेष अवयव भी ठीक ठीक सूचनाओं से वलवान बनाये जासकते और ठीक ठीक काम करने में लगाये जा सकते हैं। संस्कार जन्य मन सूचनाओं को ग्रहण कर तदनुसार काम करता है। इसके द्वारा मिली हुई सूचना के अनुसार शरीर के कोषकण काम करते हैं। इस तरह हर एक भाग, अवयव, ज्ञानतन्तु रेषा और कोष कण ठीक ठीक काम करने को वलवान बनाये और उत्ते-जित किये जा सकते हैं।

इस चिकित्सा का अभ्यास कुछ दिनों से वैद्यों में सर्वप्रिय होरहा है। निकट भविष्य में किसी न किसी रूप में यह अवश्य ही जनता में सर्वप्रिय हो जायगा।

वहुत से वैद्य " छिपी हुई " सूचनायें दे देते हैं। वे औषधि देकर कह देते हैं कि इसका परिणाम "ऐसा ऐसा" होगा और एक ही बात भिन्न रीतियों से दुहराई जाती है कि रोगी का मन विश्वास करके निर्दिष्ट परिणामों की अपेक्षा करता और "विचार कार्य का रूप धारण करलेता है"। क्या हुआ! चाहे जिस तरह सूचना दो, पर वह निदान सूचना ही है।

अगले अध्यायों में इस चिकित्सा सम्बन्धी विशेष बातें लिखी जावेंगी जिनसे हर किसी को अच्छा व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होगा। उनका अध्ययन सावधानी से किया जावे।
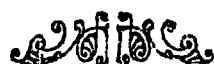
अध्याय तेरहवां

सूचनात्मक चिकित्सा का अभ्यास

पूर्व अध्याय में यह बतला दिया गया है कि किस तरह शरीर पर मानसिक दशा का प्रभाव पड़ता है। भली का भला और बुरी का बुरा होता है। स्वास्थ्य भी रोग की भांति संक्रामक है और "जैसा मनुष्य सोचता है वैसा वह होजाता है" नियम दोनों भले और बुरे विचारों में लागू होता है। सूचनात्मक चिकित्सकों के अभ्यास का आधार-स्तंभ यही सिद्धान्त है।

अपने शरीर के संबन्ध में अस्वाभाविक विचार करने की टेंव वाले लोगों में स्वाभाविक मानसिक दशाएं पुनः स्थापित करना और मन के प्रभाव द्वारा शरीर के कोष कणों और अवयवों में भी स्वाभाविक दशा स्थिर कर देना ही इन चिकित्सकों का मुख्य काम है। मानसिक और सूचनात्मक चिकित्साओं का मुख्य अन्तर उनके उपचार क्रम में रहता है। मानसिक चिकित्सा में शाब्दिक सूचनाएं नहीं दी जातीं। चिकित्सा का काम विचार संक्रमण से किया जाता है, किन्तु सूचनात्मक चिकित्सा में रोगी के मन पर शाब्दिक सूचनाएं देकर प्रभाव डाला जाता है। निसन्देह

सूचनात्मक चिकित्सा में भी चिकित्सक का विचार रोगी के मन पर मानसिक चिकित्सा के ढंग से तथा शाब्दिक सूचना से सीधा प्रभाव डालता है।

सूचना देने वालों की औसत संख्या इसको स्वीकार नहीं करती परन्तु यह बात सच है और यथार्थ में इसी का प्रभाव बहुत कुछ सुधार ने में पड़ता है। कई रोगियों के चित्त पर गहरा प्रभाव डालने के लिये शाब्दिक सूचना बहुधा आवश्यक है, परन्तु सूचना के साथ साथ प्रतिकारक (आराम करनेवाला) मानसिक बल भी जाता है, चाहे चिकित्सक को इसकी सुध रहे या न रहे। इसी बात से यह प्रमाणित हो जाता है कि यद्यपि चिकित्सक एक से ही ढंग और शब्दों से काम लेते हैं तो भी उनके कामों में बड़ा अन्तर रहता है।

अब आरम्भ ही में कह देना ठीक होगा कि शुद्ध और साधारण सूचनात्मक चिकित्सा का 'तन्द्रोत्पादक चिकित्सा' से कोई सम्बन्ध नहीं है। निःसन्देह कई सूचनात्मक चिकित्सक इन दोनों का मेल कर देते हैं परन्तु इसमें कोई लाभ नहीं और इस प्रथा के प्रतिकूल बहुत कुछ कहा जासकता है।

"तन्द्रोत्पादक चिकित्सकों" ने सोचा कि तन्द्रा की दशा में वे रोगियों को प्रभावजनक स्वास्थ्य-सूचना दे

सकते हैं। अतएव उन्होंने उपचार के आरम्भ में तन्द्रा लाना आवश्यक मान लिया। परन्तु खोजकों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि रोगी को जाग्रत और चेतनावस्था में सूचनाएं देने से उतना ही प्रभाव पड़ता है। हमारा कहना है कि पाठक गण 'सूचनात्मक चिकित्सा से' 'तन्द्रोत्पादक चिकित्सा' की भावना को निपट भिन्न मानकर अपने मन से उसका परित्याग करदें। इन दोनों को मिला कर व्यर्थ भ्रम में पड़ना हानिकारक है। अब तुम्हें सूचनात्मक चिकित्सा की भावना दृढ होगई होगी। उसके उपचार संबंधी बातें अब लिखी जायंगी।

रोगी की ग्रहण शक्ति— जब रोगीकी मानसिक दशा ग्रहण करने में उद्यत रहती है तब सूचनात्मक उपचार करने में उत्तम परिणाम निकलते हैं। जब कोई किसी से महत्वशाली विषय पर उत्सुकता से बोलना चाहता है तब वह चाहता है कि सुननेवाला शांत तथा गम्भीर दशा में हो, न कि चिन्ताओं, झंझटों, कामकाजों आदि में फंसा हो और विषय से उसका चित्त उचट कर दूर जा पड़ा हो; ठीक इसी तरह चिकित्सक को भी प्रयत्न करना चाहिए कि उसका रोगी उपचार के समय में शांत निश्चिन्त तथा गम्भीर मुद्रा बनाये रहे।

ध्यान — रोगी का पूर्ण ध्यान चिकित्सक की ओर लगा रहे क्योंकि प्रभाव का परिणाम बहुत कुछ इसी ध्यान के अनुपात में रहता है। अतएव यथार्थ उपचार आरम्भ करने के पूर्व रोगी को शांत होजाने देना भला है। चिकित्सक उसके साथ बहुत मंजुल वाणी से बात करे और उसे प्रत्येक पेशी तथा ज्ञानतन्तु रेषा को ढीली करने का आदेश दे। उसे रोगी की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार बात चीत का ढंग योग्य बना लेना चाहिए। वह केवल वे ही बातें बोले जिनसे उसके मन में शान्ति और स्थिरता की वृद्धि होवे और सावधानी से ऐसे विषयों को त्याग देवे जिनसे तर्क या विरोध उत्पन्न होने की संभावना हो। स्मरण रखो कि तुम रोगी को अपने विशिष्ट विश्वास में श्रद्धा लाने के लिये नहीं बैठे हो; तुम तो उसके रोग का दूर करने को बैठे हो। तुम्हारा ढंग और वार्तालाप शांति और समाधान कारक होवे।

स्वर — चिकित्सक अच्छा 'सांकेतिक स्वर' बनाने की ओर ध्यान देवे। इसका विवरण करना तो कठिन है पर कुछ शब्दों में थोड़ा खुलासा किया जाता है। हमारा आशय यह नहीं कि चिकित्सक एक 'निपुण वक्ता' बन जाने का प्रयत्न करे परन्तु यही है कि उसे अपने स्वर में 'चेतना' और 'यथार्थता' भर देना चाहिए। उसे ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि उसके स्वर में उसी का 'विचार'

और 'संकल्प' इतने भिद जावें कि रोगी को उनके कंप स्पष्ट प्रतीत होवें। उसका स्वर कंपमय और तेज होवे। यह आवश्यक नहीं कि वह दीर्घ उच्चारित हो परन्तु उसमें वह विचित्र गुण रहे जिसे तेजी कहते हैं। शब्द स्पष्ट कंप करें और रोगी के मन में प्रवेश करें। आत्म विस्मृति होकर उपयुज्य शब्दों के अर्थ पर मन को पूर्णतः एकाग्र करने से यह काम सिद्ध होगा। अभ्यास निसंदेह ईश्वरी देनगी और प्रासादिक गुण को संस्कृत कर देता है। स्वर 'प्रामाणिक' होना चाहिए। निम्न अभ्यासों से चिकित्सक को सहायता होगी।

कल्पना करो कि तुम किसी रोगी का 'सूचना से' उचपार कर रहे हो और वह तुम्हारे समक्ष कुर्सी पर बैठा है या वह किसी खटिया पर पड़ा है और तुम उसके पास बैठे या खड़े हो। उसकी दशा के अनुसार सूचनाएं दो। उसे दृढ़ता और निश्चय से कह दो कि अमुक परिणाम अवश्य होगा। सूचना के गुरु को चुनलो अर्थात् उन तेज और कंपमय शब्दों को जिन्हें तुम उपचार के समय तथा अनन्तर भी उसके मन में जमाना चाहो। जब तक शब्द वास्तविक अर्थ से भर कर 'कंपमय और प्रभावशाली' न प्रतीत हों तबतक उनको दुहरा कर अभ्यास करते रहो।

उदाहरणार्थ 'दृढ़' शब्द को लो क्योंकि यही शब्द है जिसका इस उपचार में बहुधा उपयोग किया जावे। इस शब्द को कई बार दुहराओ और प्रत्येक बार 'दृढ़, दृढ़, दृढ़, दृढ़' कहते हुये गम्भीरता और प्रमाणिकता बढाते जाओ। जबतक तुम अपने सारे शरीर में शब्द के कंप को स्वच्छता से प्रतीत न कर सको, जब तक शब्द विचार के साथ ठीक ठीक सायुज्य नहीं हो जा वे तबतक अभ्यास करते रहो। इसके उपरान्त 'भला' शब्द लो और उसपर भी वैसा ही अभ्यास करो। तुम्हें तोते के या फोनाग्राफ के समान शब्दों को दुहराना नहीं चाहिए परन्तु जो कुछ कहते हो उसकी "प्रतीति" लेने का प्रयत्न करना चाहिए।

इसका बहुधा अभ्यास करो और तुम्हें दीखने लगेगा कि तुम कम्पमय सांकेतिक स्वर प्राप्त कर लोगे जिससे तुम्हारे शब्दों में गंभीरता टपकेगी और रोगी को भी वे प्रतीत होने लगेंगे। सांकेतिक स्वर प्राप्त करने में गंभीरता और प्रामाणिकता दोनों बातें तुम्हारे लक्ष में सदैव रहें।

<u>नेत्र</u>- चिकित्सक की दृष्टि दृढ़ और विश्वस्त होवे। घूरे नहीं, किन्तु दृढ़ शक्ति मय दृष्टि रहे। क्रमशः अभ्यास और विचार से यह प्राप्त हो जाती है। मनुष्य सदा उस वस्तु को लालसा से निहारता है जिस पर उसका ध्यान जाता है, अतएव यदि तुम इच्छा और ध्यान से देखने का

अभ्यास करोगे तो तुम्हें ठीक निहारना अनायास आ जायगा। हम इस अभ्यास की सम्मति 'तन्द्रोत्पादक प्रभाव' के ध्यान से नहीं देते परन्तु विचार एकाग्र करने और रोगी का ध्यान जमाने के ध्यान से देते हैं। इसके सिवाय यह अविश्वासी और निश्चय हीन रोगी के मन में भरोसा जमा देता है। रोगी के निश्चय बिना किसी भी पद्धति से चिकित्सा करना कठिन हो जाता है क्योंकि रोगी चिकित्सक के अनुकूल न रह कर प्रतिकूल हो विरुद्ध दिशा में खींचातानी किया करता है।

चिकित्सक की मानसिक दशा- चिकित्सक को गंभीर मुद्रा धारण करने का अभ्यास करना चाहिए। वह अपने काम को तुच्छ कदापि न गिने। उसे अपने हृदय में रोगी के कल्याण का उत्तम ध्यान रखना चाहिए, तभी उसका यथोचित स्वकल्याण होगा। उसे सहेतुक काम करना चाहिए और छोटी गौण बातों में अपने प्रयत्न तथा दिन न खोना चाहिए। हमारा आशय यह नहीं कि चिकित्सक कुछ क्रिड़ा या विनोद न कर जीवन सदा काम की रगड़ झगड़ में ही लगावे। हम इसके विरुद्ध हैं। हमतो विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि काम विनोद और विश्राम आदि सभी स्वास्थ्य हेतु बराबर आवश्यक हैं। तथापि हमारा आशय यही है कि उसे अपने काम का ध्यान रखना चाहिए और तदनुसार हिलना चलना चाहिए। उसे अपना चित्त

काम में एकाग्र रखना चाहिए। अस्थिर ध्यान और चित्त एकाग्रता के अभाव से अच्छी सांकेतिक चिकित्सा का नाश हो जाता है। न केवल सूचनाएं योग्य प्रभाव डालने में चूकती हैं वरन रोगी भी चतुराई से ताड़ जाता है कि किसी बात की कमी है और वह योग्य कंपों को ग्रहण नहीं करता है। इच्छाशक्ति से काम लो और मनको अपने काम में झुकादो।

चिकित्सक में आत्म विश्वास होना चाहिये और यदि इसका अभाव हो तो उसे स्वचिकित्सा तथा निश्चय के अभ्यास से आत्म विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। जबतक तुम में आत्म विश्वास नहीं हो तबतक तुम दूसरों में विश्वास होने की आशा नहीं कर सकते। याद रहे कि विश्वास संग्रामक है तथैव उसका अभाव भी।

रोगी की बैठक आदि— रोगी सुगम सुखासन से बैठा रहे। शरीर को आराम देने योग्य आराम कुर्सी अथवा खटिया को काम में लाना उत्तम है। रोगी को अपनी पेशियां ढीली करना सधाया जावे। इस कामको करने की उत्तम रीति रोगी को स्वस्त निश्चेतन करने देना और फिर ऊपर उठाना है। चिकित्सक हाथ को अपने आप गिर जाने दे और साथ ही साथ रोगी को सारा शरीर बराबर ढीला करने को कहदे। संकेत (सूचना) दो-

'अपने आप पूर्णतः सुस्तालो, सुगम, सुगम, सुगम-सुगम और आनन्दित - सुगम और आनन्दित'। इस संकेत के प्रभाव से न केवल शारीरिक सुगमता और प्रसारण हो वरन मानसिक प्रसारण और ज्ञान तन्तु रेषाओं का लचीला पन उत्पन्न होवे। चिकित्सक रोगी के पास मूंढे पर बैठे या बाजू में या पीछे खड़ा रहे। इसमें तुम अपनी बुद्धि से काम लो क्योंकि पालन करने के लिये कोई निर्दिष्ट नियम आवश्यक नहीं है।

दुहराना- इस चिकित्सा के सिद्धांतों में से एक यह भी है कि 'दुहराने से सूचनाओं का बल बढ जाता है"। सूचनाओं को लगातार दुहराने से वे रोगी के मन पर पक्की तरह से बंध जाती हैं इसलिये चिकित्सक सूचना के 'गुरु' को पुनः पुनः दुहरावे। यह आवश्यक नहीं कि एक ही से शब्दों को उच्चारता रहे। वह शब्द योजना बदल देवे पर यही याद रखो कि प्रत्येक बार उसकी रचना में 'गुरु' अवश्य बना रहे। याद रखो कि सूचना को रोगी के मन में रोपना उतना ही कठिन है जितना कि किसी किले का आक्रमण। सर्व बाजुओं से उसे साधना चाहिए और इसी लिये भिन्न भिन्न शब्द योजनाओं से दुहराना आवश्यक है। सूचना के दुहराने में 'गुरु' की स्पष्ट ध्वनि निकले और वह तेज कंपमय होवे।

परिस्थिति- यथा संभव उपचार ऐसी परिस्थिति में किया जावे जो रोगी के चित्त को सूचनाओं से दूर न हटने दे। बाहरी शब्दों और दृश्यों को दूर करने का प्रयत्न करो जिससे रोगी के कान सुस्थिर होके दी जाने वाली सूचनाओं पर एकाग्र हो जावें। किवाड़ों को बन्द करदो या उन पर पर्दे (चिक आदि) डालदो जिससे प्रकाश भी धुँधला हो जावे। इन वस्तुओं का बड़ा मनोवैज्ञानिक महत्व है।

अपेक्षित दशा के चित्र की कल्पना—सूचनाएं देने में रोगी के मन में अपेक्षित दशा का चित्र जाग्रत करना महत्व का काम है। अंशशः उसकी सहायता करो और अपेक्षित आराम की प्रत्येक रेखा उसे बतलाओ और अन्त में उसके मन में पूर्ण स्वास्थ्य संपन्न दशा का चित्र अंकित कर दो। चित्र अंकित करने की आवश्यकता तुम्हें अच्छी तरह समझलेना चाहिए। विचार ही कार्य में परिणत होता है और रोगी का मन प्रति उपचार में चित्र पर बारीकी से जमकर अज्ञात रीति से शरीर को सूचित कल्पित-चित्र धारण करने की-प्रकट करने की-प्रेरणा करता है।

साधारण विचार—चिकित्सक के कहे हुए शब्दों में कोई विशेष जादू नहीं रहता पर इस उपचार का पूरा महत्व शब्दान्तर्गत 'भाव' में रहता है। जितनी मात्रा में

रोगी इस भाव को लेकर आत्मसात करेगा उतनी ही मात्रा में उपचार की सफलता होगी। अतएव चिकित्सक अपने भावों में और उनके भेजने में जितनी प्रामाणीकता और चेतनता रखेगा उतनी ही सफलता होगी। निसन्देह भाव की मानसिक तरंग लगातार चलती रहती है परन्तु चिकित्सक के तेज सूचनात्मक शब्दों से उसका प्रभाव बढ़जाता है और दो के योग से एक शक्तिशाली चमत्कार हो जाता है। रोगी के चित्त में अपेक्षित दशाओं की लगा-तार धुन बनी रहे और वह उनको साक्षात करने की आशा लगाये रहे। इसी लिए यह नियम महत्व का है कि अपनी सूचनाओं में रुग्ण दशाओं का नाम कभी मत लेओ परन्तु सदा वांछित दशा की बात बोलो। सांप्रत दशा से चित्त को हटा दो और उसे वांछित दशा में अटका दो। इससे तुम रोगी के मन में एक आदर्श उपस्थित कर देते हो जिसके समान वह अज्ञानतः रहने का प्रयत्न करता है।

इस नियम के पालन में असावधानी मत करो क्यों कि यह अत्यन्त महत्व का है। निषेधात्मक सूचनाएं कभी मत दो, सदा 'विधायक' सूचनाएं देओ। उदाहरणार्थ ऐसा मत कहो "तुम दुर्बल नहीं हो, इत्यादि" परन्तु प्रत्युत बार बार यही सूचित करो कि 'तुम बलवान हो अन्तर तुम्हारी समझ में आया क्या? इसका कारण यह है कि

निषेध करने की बात को बार बार दुहराने से तुम उसके अस्तित्व को पक्का कर देते हो और रोगी के मन को उसकी ओर अनायास झुका देते हो।

अध्याय चौदहवां

सूचनात्मक उपचार—

सूचनात्मक उपचार करने में चिकित्सक को अपने मन में सदा वांछित दशाओं का 'कल्पना-चित्र' रखना चाहिए। यह कल्पना चित्र उसमें सुगमता और बुद्धि पूर्वक यथोचित संकेत देने की योग्यता लादेगा और रोगी पर 'विचार प्रेषण' की रीति से प्रेरित किये हुए विचार का प्रभाव डालेगा। इस विषय का वर्णन आगे किया जावेगा।

चिकित्सक स्वयं उन दशाओं से सुपरिचित हो जावे, जिनको वह लाना चाहता है और फिर उनके अनुसार बारीकी से सूचना देना आरंभ करे।

थोड़ी बात चीत करके शरीर पर मन के अधिकार के सम्बन्ध में रोगी को बता कर उपचार आरंभ करना सदा भला है। रोगी को यह ज्ञात हो जावे कि मानसिक संकेतों का रुग्ण भागों पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। उसे कठिन सिद्धान्त और विवरणों की उलझन में न पटकने की सावधानी रक्खो क्यों कि वह विषय को तुम्हारे बराबर नहीं समझता है। होने वाले प्रभाव मात्र कह दो और भिन्न भिन्न मानसिक क्रिया सम्बन्धी लम्बे लम्बे सिद्धान्तों

को छोड़ कर मन का शरीर और भागों पर अधिकार की बात बतलाकर संतोष कर लिया करो। रोगी को वही जता दो जिसे तुम करने और पाने की आशा करते हो और यथा संभव उसे भी तुम्हारी सूचना अनुसार मानसिक चित्र बनाकर अपने साथ सहयोग कराओ।

साधारण उपचार में वे सूचनाएं दी गई हैं जो रोगी को मन की शक्ति की भावना अधिक स्पष्ट करदेंगी। उपचार में मन लगा रखने के लिए इसको कभी कभी करना अच्छा है। मन का लगा रखना बड़े महत्व का है क्यों कि इसी पर बहुधा उपचार की मान्यता अवलम्बित है।

उपचार करने में यहां दिये हुए शब्दों को ही दुहराने का प्रयत्न मत करो। केवल भाव लेलो और उसे अपने शब्दों में प्रकट करो। तुम्हारे शब्द तुम्हारे लिए अधिक भावपूर्ण होंगे और तुम दूसरों के शब्दों को दुहराने की अपेक्षा इससे वस्तु के मर्म को पाने में अधिक योग्य होओगे।

साधारण सूचनात्मक उपचार

रोगी को सुखासन से शांत बैठा कर और शरीर ढीला करा कर कहो :— "अब, महाशय-(महाशया)-तुम शांत, आनन्दित और संतुष्ट होकर विश्राम ले रहे हो। तुम्हारा शरीर विश्राम में है-प्रत्येक पेशि ढीली हो गई

है - प्रत्येक ज्ञान तन्तु रेषा शांत है। तुम आपाद मस्तक, शांत, विश्राम युक्त और स्वस्थ चित्त हो। तुम्हारा मन शांत और सुसंबद्ध है और तुम मेरी चिकित्सा की सूचनाओं को आन्तरिक मन में अत्यन्त गहरी बैठने दोगे जिससे वे तुम्हारे लिए स्वास्थ्य और शक्ति प्रकट करें। अच्छी धरती में रोपे हुए बीज के समान वे भी अंकुरित हो कर तुम्हारे लिए स्वास्थ्य और शक्ति के अच्छे फल देंगे"।

"मैं तुम्हारे अमाशय और पचन क्रिया के अवयवों को आरंभ में बलवान बनाऊंगा क्योंकि इन्ही से तुम पोषण पाते हो जो तुम्हारी काया पलट कर तुम्हें नवीन बल देगा। मैं तुम्हारे अमाशय को यथोचित मात्रा का भोजन पचाने की और फिर उसे आत्मसात करने की और उसे पोषण रूप में बदलने की – रक्त रूप बनाने की प्रेरणा करूंगा। यह पोषण तुम्हारे शरीर के सब भागों में पहुंच कर कोषों को बनावेगा और बलिष्ट करेगा। तुम्हें पूरे पूरे पोषण की आवश्यकता है और मैं तुम्हारे पोषण के अवयवों को प्रेरणा कर रहा हूँ कि वे तुम्हें ठीक पोषण देवें।

"तुम्हारा अमाशय बलिष्ट, बलिष्ठ, बलिष्ट– और तुम्हारे लिये अच्छा काम करने को और तुम्हारे पोषणार्थ आवश्यक भोजन को पचाने को बलिष्ठ, समर्थ, इच्छुक और उद्यत है। वह आज - ठीक अभी ही - शक्ति और

सत्ता को प्रकट करना आरंभ कर देगा जिससे तुम्हारा भोजन पच जायगा और तुम्हें यथोचित पोषण मिल जायगा। तुम्हें अच्छा होने के लिये यथोचित पर्याप्त पोषण चाहिये और इसीलिये अमाशय से हम ठीक ही आरंभ करते हैं। तुम्हारा अमाशय वलिष्ठ, बलिष्ठ, वलिष्ठ और भला है और अपना काम करने को तत्पर है। तुम्हें अमाशय में वल की यह वृद्धि जान पड़ने लगेगी- तुम उसे अभी जानने लग गये हो, और तुम देखोगे कि दिन दिन वह वलिष्ठतर होता जायगा और प्रतिदिन अपना काम सुष्टु तर करता जावेगा। तुम्हारा अमाशय और पोषण के अवयव अपने काम ठीक ठीक करने को उद्यत हैं और शरीर के सव भागों में पोषण भेजना आरंभ कर देंगे और यह तुम चाहते हो - यही तुम्हारी मांग - आवश्यकता - है। मैं उन थके हुये अवयवों में स्फुर्ति भेज सकता हूँ और उन्हें नवीन वल, स्वास्थ्य और पौरुष दे सकता हूँ और तुम्हें तुरन्त इस सुधार -उन्नति- का ज्ञान हो जावेगा अव याद रखो; पोषण, पोषण, पोषण - वस हम तुम्हारे लिये इसी के पीछे पड़े हैं और अव - आरंभ ही से - यह ठीक ठीक मिलने लगेगा।" "और मैं आशा करता हूँ कि तुम मेरे साथ सहयोग करोगे और सदा सर्वदा प्रफुल्लित सुखद और आमोदप्रद विचार करने का प्रयत्न करोगे। मैं कहता हूं कि प्रफुल्लित आमोदप्रद और सुखद विचार रोगी दशा को हटा देंगे, निकाल बाहर कर देंगे। ऐसे ही

विचारों से तुम्हें अपनी मानसिक और शारीरिक दशाओं में निश्चित उन्नति दीखेगी । अब इन शब्दों को - प्रफुल्लित, सुखद और आमोदप्रद को - याद रखो, इन्हें याद करलो, बहुधा दुहराते रहो ।" "अब हम तुम्हारे रक्त संचार को गति को बराबर करने वाले हैं। पोषण के बाद रक्तसंचार ही महत्व की बात है । तुम्हारे शरीर में आपाद मस्तक यथोचित और समवेग का रक्तसंचार अब प्रकट होने लगेगा। रक्त तुम्हारे सारे शरीर में सिर से पांवों तक स्वतन्त्रता और सुगमता से संचार करेगा और अपने साथ प्रत्येक भाग को देने के लिये पोषण और बल ले जायगा । वह अपने साथ कोषों से, अवयवों और भागों से दूषित पदार्थ को लेजायगा जो फेफड़ों में जल जायंगे और उच्छ्वास के साथ शरीर से बाहर निकल जावेंगे और उस के स्थान में रक्त से नवीन अच्छा पदार्थ आजायगा। अब कई बार गहरी श्वास लो और उस सड़े हुये पदार्थ को जला दो जिसे रक्त अपने साथ फेफड़ों में ओषजन द्वारा दग्ध होने को ले आया है। श्वास के साथ फेफड़ों में ओषजन आ जाती है। तुम श्वास में स्वास्थ्य और शक्ति- स्वास्थ्य और शक्ति- लेरहे हो ; मैं कहता हूँ कि अब से तुम को अधिक अच्छा लगेगा। बहुधा गहरे श्वास का अभ्यास करो और सोचो कि तुम स्वास्थ्य और शक्ति श्वास में लेरहे हो और जीर्ण शीर्ण अंशों को - दशाओं को उच्छ्वास

में बाहर निकाल रहे हो क्यों कि तुम यही तो कर रहे हो। सारे शरीर में पूर्ण रक्तसंचार और यथोचित श्वासोच्छ्वास अच्छे काम में सहायक होते हैं।

" तुम्हें प्रतिदिन यथेष्ट पानी पीकर शरीर से दूषित द्रव्य को बाहर निकालने लगना चाहिये। तुम्हें कुछ अधिक द्रव पदार्थ लेना चाहिये। तुम्हें अपने पास पानी का ग्लास रखना चाहिये और यह कहते हुए कि " मैं यह पानी शरीर से अशुद्धियों को स्वच्छ करने के लिये और नवीन, स्वाभाविक और सस्वास्थ्य दशाओं को लाने के लिये पी रहा हूँ।" उस से बहुधा एक या दो घूँट लेते रहना चाहिये। इसमें आनाकानी मत करो क्योंकि यह अत्यन्त महत्व का है। पौधे को सस्वास्थ्य रहने को पानी की आवश्यकता है और इसी तरह तुम को भी। अत एव पानी को तुच्छ मत समझो।"

" द्रव सामग्री की वृद्धि से तुम्हारी आंतें प्रति दिन नियमित क्रिया करेंगी। और इस तरह शरीर से दूषित पदार्थ बाहर लेजाया करेंगी। तुम्हारी आंतें कल प्रात काल से स्वाभाविक और सुगम गति करने लगेंगी और शीघ्र तुम्हारी नियमित बान बन जावेगी। तुम्हें मुझे इस काम में सहायता देने को बहुधा यह विचार रखना चाहिये कि तुम्हारी आंतें स्वाभाविक गति करने लगेंगी।"

" अब हमने भला काम आरंभ कर दिया है, सो तुम्हें उसे

जारी रखना चाहिए। तुम्हारे पोषण तयार करने और पहुंचाने के अवयवों में सुधार हो जाने से तुम्हें अब अपने भोजन से पोषण मिलने लगेगा। तुम्हारा प्रत्येक भाग वलिष्ठ हो रहा है और दनि दिन तुम्हारे लक्ष में सुधार आवेगा। तुम्हारे रक्त संचार की समगवि हो जावेगी और तुम्हारा शरीर इससे लाभ उठावेगा। तुम्हारा श्वास अब सरल हो जावेगा और इससे तुम्हारा शरीर बलिष्ठ होगा और जीर्णशीर्ण पदार्थ भीं जल जावेंगे। तुम द्रव पदार्थ कुछ अधिक मात्रा में लेकर जीर्णशीर्ण पदार्थ को बाहर निकाल दोगे तुम्हारी आंतें ठीक ठीक संचालन करके शरीर से विषाक्त मल-मूत्रादि को बाहर निकाल देंगी। तुम प्रफुल्लित, आनन्दित, सुखी बलिष्ठ और अच्छे होजाओगे।"

"तुम आपाद मस्तक अधिक बलवान होगये हो और तुम्हारा प्रत्येक भाग, कोष और अवयव अब ठीक ठीक काम कर रहे हैं और तुममें स्वास्थ्य, वल, पौरुष, और स्फूर्ति अब ठीक ठीक आरहे हैं।

अनन्तर पीड़ा पहुंचाने वाले विशेष भागों को निर्दिष्ट आदेश दे देओ, सूचनाओं को अपनी आवश्यकतानुसार बनालो। सूचना देओ कि पीड़ा दूर हो जावेगी और स्वाभाविक स्थिति आप प्रकट होवेगी।

तुम देखोगे कि साधारण उपचार से बड़ी उन्नति होगी चाहे स्थानीय पीड़ा जिस प्रकार की हो। इसका रहस्य

यही है कि यदि तुम पोषण, आत्मसात्व और उत्सर्ग का काम ठीक और स्वाभाविक रीति से कराने का प्रबन्ध कर दो तो बाकी की बातें अपने आप सुधर जाती हैं। जिस पुरुष या स्त्री में पूरा पूरा पचन, आत्मसात्व (पचकर अंग लग जाना) और उत्सर्ग (अर्थात अन्न पचकर रक्त बन जाना और मल मूत्र (राख) बाहर निकल जाना) हैं वे अवश्यमेव सस्वास्थ्य रहेंगे। हठ योग की बातों को पढ़कर उनके अनुसार सूचना देने से रोगी को गुरुतम लाभ होगा।

हठ योग के अनुसार शरीर-धर्म की बातों का ज्ञान होजाने से तुम्हें स्वास्थ्य का पूरा मर्म अवगत हो जावेगा। रोगियों को ये बातें बतलाने से उनकी श्रद्धा इन पर जमेगी और वे अपने रहन सहन के अयोग्य ढंगों को बदल देंगे जिससे उनकी आयु दीर्घ होगी। इस ढंग की सूचना उनके लिए ईशप्रसाद होजावेगा। तुम अपना मन इस भावना पर पक्का जमाओ जिससे दूसरों को प्रभावान्वित कर सको।

तुम देखोगे कि अपूर्ण पोषण और बद्ध कोष्ठ ही दमन करने की मुख्य बातें हैं चाहे रोग किसी भी प्रकार का क्यों न हो। यह सब तुम्हारे रोगी को समझा दो और कह दो कि सूचना द्वारा तुम स्वाभाविक स्थितियां पुनः स्थापित करोगे और इस तरह कर सकोगे।

स्त्रियों के रोग में यथा मासिक धर्म में बाधा आदि में ऊपरोक्त उपचार से आश्चर्य जनक काम होंगे। नियमित रूप से मासिक धर्म होने की सूचना देदो, करने का ढंग वैसाही है जैसा कि आंतों की पीड़ामें। रोगी नियमित मासिक धर्म के समय की श्रद्धा से प्रतीक्षा करे और अपने मन में पहिले ही से विशेष दिन नियत कर रखे। महीने दो महिने में नियमित बान उपस्थित हो जावेगी।

लम्बे विवरण देने की कुछ आवश्यकता नहीं। यहां 'गुरु' दे दिया गया है और तुम सब रोगों के उपचार में उसे तुरन्त उपयुक्त बना सकते हो। ठीक ठीक पोषण, उत्सर्ग-समगतिशील रक्त संचार, और श्वासोच्छ्वास का सदा स्मरण रखो क्योंकि ये ही विश्व में सर्वोपचार की मुख्य बातें हैं। इस पुस्तक में दिये हुये मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के अन्य ढंगों को पढ़ डालो। उन में से प्रत्येक से कुछ न कुछ तुम्हें प्राप्त हो जावेगा।

अध्याय पन्द्रहवां

आत्म (बोध) सूचना

"मनुष्य जैसा अपने हृदय में सोचता है वैसा वह हो जाता है" यह एक प्राचीन कहावत है जिसकी सत्यता हमें प्रतिवर्ष अधिकाधिक प्रकट हो रही है। जिस अध्याय में मन का शरीर पर प्रभाव वर्णित है उसमें तुम देखोगे कि विचारों के प्रभाव से होने वाले बहुसंख्यक शारीरिक रोग लोगों को निजी विचारों से अर्थात् आत्मबोध से ही हुए हैं। मनुष्य का शारीरिक स्वास्थ्य बहुत कुछ आत्मबोध पर निर्भर है। यदि वह स्वास्थ्य, बल और निर्भयता की मुद्रा धारण करता है तो वह तदनुसार प्रकट होने लगता है और यदि वह शोकजनक विचारों और भावनाओं से दबा रहे तो उसका शरीर भी वैसा ही जीर्णशीर्ण हो जाता है। भय रोग का एक बड़ा कारण है। भय से शरीर पर विपाक्त प्रभाव पड़ता है और उसके प्रभाव कई रीतियों में प्रकट होते हैं। भय को हटादो कि तुम रोग का रण हटा चुके, बस धीरे धीरे उसके चिन्ह भी मिट जांयगे। परन्तु ये बातें पहिले कही जा चुकी हैं। इस पुस्तक में सिद्धान्तों की भर मार नहीं करना है, केवल व्यवहारिक बातें बत-लाना है। प्रश्न यह है कि अपने आप आत्मबोध द्वारा किस तरह उपचार किया जावे ?

इसका उत्तर बहुत सरल है। पुस्तक में दिये हुए आदेशों के अनुसार कोई भी अपने आप ऐसी सूचनाएं करे, मानो वह किसी अन्य रोगी को कर रहा हो। सूक्ष्म "अहंकार" (लिंगात्मक मन) स्थूल मन (शरीराभिमानी मन जो कि कोष से अवयव तक सारे शरीर और उसकी क्रियाओं के संचालन का प्रबन्धक है) को सूचनाएं देवे। यदि यथेष्ठ श्रद्धा से ये सूचनाएं दी जावेंगी तो वे ग्रहण की जावेंगी और कार्य में परिणित होंगी। जैसे लोग अयोग्य आत्मबोध (सूचनाओं) से बीमार पड़ जाते हैं वैसे ही योग्य सूचनाओं द्वारा अपने आप स्वास्थ्य पुनः प्राप्त कर सकते हैं। इसमें कोई गुप्त भेद नहीं है। यह चिर कालीन मनोवैज्ञानिक नियम के अनुसार होता है।

मानलो कि तुम्हें आवश्यकता है तो तुम्हारे लिए 'आत्मबोध' की रीति आरंभ करने का सब से उत्तम उपाय हठयोग की पुस्तक पढ़ना है जिसमें उत्तम जीवन की व्यवहारिक बातें हों। उत्तम जीवन की व्यवहारिक बातों को जानकर उत्तम विचार करने का अभ्यास करो। उत्तम विचारना सदा प्रफुल्लता और निर्भयता की मुद्रा बनाये रखना ही है। येही दो बातें बल उत्पन्न करती हैं।

यदि तुम्हारा स्वास्थ्य अपूर्ण है तो निश्चय रखो कि किसी प्राकृतिक नियम के तोड़ने से ही ऐसा हुआ है। तुम

तत्संबन्धी पुस्तकों से इस नियम को ढूंढ सकते हो और अपनी बान को सुधारकर आत्मबोध द्वारा या योग्य विचार से स्वाभाविक क्रिया को पुनः स्थापित कर सकते हो।

प्रतिशत नव्वे मनुष्यों में तुम देखोगे कि रोग का मूल अयोग्य पोषण और अपूर्ण उत्सर्ग ही रहता है। क्या कहते हो ? तुम इसे नहीं मानते! भला, तो तुम्हें अपने चिन्ह बतलावें और देखें कि वे ठीक निकलते हैं या नहीं।

पहिले, तुम्हारी भूख मंद है और अपूर्ण पचन होता है। फिर तुम्हें बद्धकोष्ठ होता है (स्त्री हो तो बहुत कम और अनियमित 'मासिक स्राव' होता है) फिर तुम्हारे हाथ पांव ठंडे पड़ते हैं जिससे अपूर्ण रक्त संचार प्रकट होता है। तुम्हारी आंखे और कान,ग्रसित होते हैं। तुम्हें कानों में भांई होती और आंखों में धुंधली छाती है। तुम्हारा स्वाद मारा जाता और प्राणशक्ति दुर्बल हो जाती है और भीतरी झिल्लियों में शोथ उत्पन्न हो जाता है। परन्तु तुम्हारी 'वेदना' गृहणशक्ति अस्वाभाविक बढ़ जाती है और तुम बात बात पर घबराते, चिढ़ते और क्षुब्ध हो जाते हो। तुम्हें रात को अच्छी नींद नहीं लगती और सदा तुम थके हुए दीखते हो। तुम्हारे चमड़े का रंग उड़ गया है और तुम्हारे कपोल फीके पड़ गये हैं। तुम्हारे ओंठों और नाखूनों की स्वस्थ्य-सूचक लाली चली गई है। इत्यादि, इत्यादि।

अब क्या यह वर्णन तुमको लागू नहीं होता ? क्या यह आश्चर्य नहीं कि तुम्हें विना देखे या जाने तुम्हारी शिकायतों को हमने ताड़ लिया ? परन्तु इस में कोई अलौकिक काम नहीं, हम निश्चय दिलाते हैं कि हमने दूषित पोषण और अपूर्ण उत्सर्ग से होने वाले रोगों के लक्षण कह डाले हैं। कारण को दूर करने का उपाय रहन सहन की बुरी आदतों को और विचारने की बुरी टेवों को दूर करना है। आत्मबोध से तुम्हें योग्य विचार करने में और पीड़ा को शीघ्र दूर करने में सहायता होगी। पिछले अध्याय में दिये हुए साधारण उपचार के ढंग से अपने आप का उपचार करो। उपचारों को उत्साह से करो, ठीक वैसे ही जैसे कि अपने बदले दूसरों का उपचार करते हो। इससे तुम्हें आश्चर्यजनक परिणाम होंगे।

जैसे तुम होना चाहो वेसे ही रूप में अपने आप का अनुमान कर "साक्षात कार" करो। फिर वही (तद्रुप) होने का विचार करने लगो और सस्वास्थ्य मनुष्य (स्त्री) के समान रहो। अपने आप बात चीत करो। (गुन गुनाओ) और अपने अंतः करण से कहदो कि तुम उससे अमुक काम करने की आशा रखते हो और उसे शरीर की सावधानी रखने को कहदो और उससे नवीन कोष और स्नायु बनवाओ और जीर्णशीर्ण तथा रुग्ण द्रव्य को

शरीर से अलग कराओ । वह एक सुशिक्षित सहायक समान तुम्हारी आज्ञा मानेगा और तुम स्वास्थ्य और शक्ति प्रकट करने लगोगे।

इस आत्मबोध में कोई विशेष गूढ़ नहीं है। तुम्हारा अंतः करण केवल तुम्हारे मन को अपने काम सावधानी से करने को कह देता है। और स्वाभाविक रहन सहन से उसे काम करने को सुद्रव्य मिलजाता और सफलता पाने को सुस्थिति प्राप्त हो जाती है।

भिन्न भिन्न रोगों के लिए "सूचनाओं" को देकर किताब का कलेवर बढ़ाना व्यर्थ है। तुम स्वयं इनको गढ़ सकते हो और उनसे भी उतना ही काम निकलेगा। मन को एक भिन्न पुरुष समझ कर आदेश दो और अपने आदेशों में पूरी जान डाल दो, कभी भी हंसी में मत डालो। श्रद्धा पूर्वक संवाद करो। उससे कहो "हे मन, मैं चाहता हूँ कि तुम काम में लगो और मेरे लिए वस्तुओं का अधिक अच्छा प्रबन्ध करो। मैं इस दीर्घ काल की पीड़ा से बहुत खिन्न हूँ और इससे छुटकारा पाना चाहता हूं। मैं पुष्टि कारक भोजन करता हूं और मेरा अमाशय इसे बराबर पचाने को यथेष्ट बलवान है और मैं तुम पर प्रेरणा करता हूँ कि इस पर तुम ध्यान देओगे-ठीक, अभी जाओ और करो। मैं शरीर से दूषित पदार्थों को बाहर काढ़ने के लिए यथेष्ट पानी पीता हूँ और तुमसे अब यही मांगता हूँ

कि तुम देखो मेरी आंते प्रतिदिन नियमित गति करती हैं। मैं कहता हूं कि मेरा रक्त संचार समगतिशील और स्वाभाविक बनाया जावे। मैं ठीक ठीक श्वास लेता हूँ और दूषित द्रव्य को जला डालता हूँ और रक्त में यथेष्ट ओषजन मिलाता हूँ, अब सावधान बाकी का काम तुम्हारा है। काम में लगो; उठो, काम करो"। इसमें जो कुछ ठीक समझो और मिला कर कहदो और फिर देखो कि मन किस तरह काम में लग जाता है। "विचारबल चिकित्सा" के अध्याय में इस विषय की बातों को अच्छी तरह देखलो। जब तक सब काम ठीक न चले तब तक निश्चित विचारों पर मन जमाकर योग्य मुद्रा धारण करो। अपने आप को कहो "मैं बलवान और सस्वास्थ्य हो रहा हूं, मुझ में पौरुष आरहा है इत्यादि"। अब हम तुम्हें करने की रीति कह चुके, बस उठो काम में लगो और उसे करो।

अध्याय सोलहवां

मानसिक चिकित्सा

सूचनात्मक चिकित्सा के अध्याय में बतला दिया गया है कि अयोग्य विचार रखने से शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अब उन बातों को दुहराना अथवा अधिक उदाहरण देकर स्पष्ट करना आवश्यक नहीं है। यह अहित कर लिया गया है कि प्रायः प्रत्येक पाठक शारीरिक क्रियाओं पर होने वाले मानसिक दशाओं के प्रभाव से सुपरिचित है अतएव इसके अधिक प्रमाण देकर पुस्तक की कलेवर-वृद्धि करने की कुछ आवश्यकता नहीं है।

इस चिकित्सा की प्रणाली और सिद्धान्त इस बात के ज्ञान पर अवलम्बित है कि मनका शरीर पर प्रभाव पड़ता है और जिस तरह मन अस्वाभाविक क्रिया उपस्थित कर देता है उसी तरह रीति बदल कर वह पूर्ण स्वास्थ्य और शुद्ध क्रिया भी पुनः स्थापित कर सकता है। न हम इस चिकित्सा की प्रणालियों के विशेष सिद्धान्तों को कहने बैठेंगे और न 'मन की (मन क्या है ?) भिन्न भिन्न परिभाषाओं को समझाने की चेष्टा करेंगे और न चंगे होने की क्रियाओं की वैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझावेंगे। यथार्थ बात यही है कि मानसिक चिकित्सा एक तथ्य है। बस, इसके उपयोग और प्रयोग की रीति बतला देना ही इस पुस्तक का मुख्य काम है।

सचनात्मक चिकित्सा के अध्यायों में हम ऐसी एक सूचना दे चुके हैं जो इस चिकित्सा के उपदेशों के साथ सम्मिलित की जा सकती है। यथार्थ में ये दोनो एक ही हैं; एक ही वस्तु की दो बाजुएं हैं। मुख्य अन्तर पीछे लगाये हुए बल प्रयोग के ढंग में है। सूचनायें प्रायः सर्वथा शाब्दिक योजना आदि पर अवलम्बित रहती हैं किन्तु मानसिक चिकित्सा विचार प्रेरणा पर निर्भर है। उत्तम चिकित्सक रोगी का समक्ष देखकर इन दोनों को मिला लेते हैं, परन्तु मानसिक चिकित्सा में रोगी की उपस्थिति की आवश्यकता नहीं रहती। कई कोस दूरस्थ रोगियों को बहुधा इसके द्वारा उपचार दिया जाता है।

अंध विश्वास कह कर एक समय विचार-प्रेषण की हंसी उड़ाई गई थी परन्तु अब वैज्ञानिक संसार इसको मानने लग गया है और शीघ्र ही इसके नियम भी नियत करलेगा।

सब युगों में और लोगों में यह दिव्य दृष्टि संपन्न जनों को अवगत रहा है और किसी भी प्रकार से यह 'नवीन' नहीं यद्यपि बहुत से इसे सांप्रत में खोज निकालने का दावा करते हैं।

आधुनिक बुद्धि संपन्न तथा ख्यात मनुष्यों की स्वीकृति के कुछ उदाहरण हम यहां देते हैं।

मनोवैज्ञानिक संस्था के गत मन्त्री महाशय एडवर्ड टी० बेनेट कहते हैं ' यह निष्कर्ष अकाट्य प्रतीत होता है कि मन में ज्ञान प्रवेश होने के द्वार केवल पांच इन्द्रियां ही नहीं हैं। दूसरे शब्दों में खोजक इस निर्णय पर पहुँचता है कि विचार प्रेषण भी वैज्ञानिक तथ्यों में अब गिना जाना चाहिए।"

न्यूयार्क के विख्यात वैज्ञानिक महामहोपाध्याय जान डी क्वेकनबास कहते हैं कि मेटलिंक ने भविष्यत् वाणी की थी कि एक समय ऐसा आवेगा जब कि लोग परस्पर के मन की भावों को इन्द्रियों की सहायता के बिना जान लिया करेंगे सो समय यथार्थ में अब आगया है।"

क्लार्क वेल कहते हैं कि " विचारतरंग " स्वीकार करने वाले वैज्ञानिक इसे मानवी शरीर की अज्ञात इन्द्रि मानते हैं; जिसके द्वारा विचारविनिमय की भौतिक क्रिया मस्तिष्कों के बीच में होती है - यह कुछ माध्यम है जो कि भावनाओं को एक दूसरे के पास उसी तरह पहुँचाता है जैसे कि विद्युतप्रवाह अथवा गुरुत्वाकर्षण होता है। हम जानते हैं कि इन दोनों का अस्तित्व है परन्तु अभी भी हम नहीं समझा सकते कि ये कैसे काम करते अथवा किन रीतियों से स्थानान्तर करते हैं।"

विख्यात अंग्रेज वैज्ञानिक महामहोपाध्याय विलियम क्रुक्स कहते हैं कि " यदि हम इस सिद्धान्त को स्वीकार

करें कि मस्तिष्क भिन्न तत्वों – ज्ञानतन्तु कोषों – से निर्मित हुआ है तो हमें यह मानलेना चाहिए कि प्रत्येक कोष जड़ वस्तु के प्रत्येक परमाणु के समान अपनी कंपगति रखता और स्थितियों के अनुसार क्षुब्ध होता है, यथा आंख के भीतरी पर्दे के ज्ञानतन्तु परमाणु इथर में कंप से क्षुब्ध हो उठते हैं। यदि समीपस्थ अन्य जीवाणु कंपगति प्राप्त करे तो इसका कोई योग्य कारण नहीं कि वे इथर द्वारा परस्पर टक्कर न मारें।"

"डाक्टर शेल्डन लीविट कहते हैं कि यह बात निर्विवाद है कि जिन्होंने 'विचार प्रेषण' के विषय में ध्यानपूर्वक विचार और धैर्यपूर्वक खोज की है उन्हें इसकी सत्यता और व्यवहारिकता में विश्वास होगया है। स्वानुभव ने मुझे भी पक्का विश्वास करादिया है। मैं जानता हूं कि विचार किसी न किसी तरह एक चैतन्य मन से दूसरे मन को पहुँचाया जा सकता है और मैं उसके विश्वास करता हूं कि ग्राहक के निश्चेतन मन को और भी अधिक तेजी और पूर्णता से पहुँचाया जा सकता है।"

फरासीसी ज्योतिषी केमिल फ्लामेरियन कहते हैं कि 'इसीसे हम अपने पूर्व अवलोकनों का संक्षेप में निर्णय यही निकालते हैं कि एक मन दूरस्थ अन्य मन पर किसी शाब्दिक माध्यम के अथवा अन्य किसी दृश्य विनिमय-

माध्यम के विना अपना प्रभाव डाल सकता है। यदि हम तथ्यों को स्वीकार करते हैं तो इस निर्णय को न मानना बुद्धिसंगत नहीं समझते। यह स्वीकार करना न तो अवैज्ञानिक है और न उटपटांग कि कल्पना की भावना दूर से भी मस्तिष्क पर प्रभाव डाल सकती है। दूरसे एक मनुष्य का अन्य पर प्रभाव डालना वैज्ञानिक तथ्य है। इसका अस्तित्व उतना ही सत्य है जितना कि प्रयाग, शिवाजी, ओषजन या तुलसीदास जी का।" और उनका कहना है कि "निसन्देह हमारी मानसिक तरंग इथर में हलचल उत्पन्न करती है जो अन्य तरंगों के सामने दूर तक फैलती है और समानधर्मी मस्तिष्कों को ज्ञात हो जाती है। मानसिक तरंग का – क्रिया का – रूपान्तर इथर की हलचल में हो जाना या इसके विपरीत होना 'टेलिफोन' की क्रिया के समान होता है। जहां ग्राहक तख्ती, जो दूसरे छोर की तख्ती के समान होती है, दी हुई ध्वनि को ध्वनि द्वारा नहीं किन्तु विद्युत द्वारा पुनः रचती है; परन्तु ये निदान तुलना ही हैं।"

इस तरह उदाहरणों की भरमार करने की आवश्यकता नहीं है। विचार प्रेषण के तथ्य को ध्यान में रखकर इसी के द्वारा मानसिक विज्ञान शास्त्री तथा अन्य जन 'परोक्षोपचार' करते हैं, जब कि वे रोगी के साक्षात होकर उससे बात करने में असमर्थ रहते हैं।

इस चिकित्सा का सिद्धान्त इस बात में है कि केन्द्रिय मन शारीरिक क्रिया पर — अवयव, कोष और शरीर के भागों द्वारा प्रकटित मन पर—अधिकार जमाता है। यह क्षुद्र मन विराट मन की स्थितियों पर नाचता है और स्वभावतः इसकी पीड़ा का प्रभाव उस पर पड़ता है। चिकित्सक रोगी के इस केन्द्रिय मन में मानसिक मुद्रा की स्वाभाविक स्थिति जमाने का प्रयत्न करता है। इस स्वाभाविक मुद्रा में व्यक्ति पहिचान लेता है कि शरीर पर और उसकी सारी क्रियाओं पर अपनी सत्ता कितनी चलती है।

एक बार प्राप्त होजाने से यह मुद्रा रोग को रोकेगी और रोग आ भी जावे तो उसे हटाकर पुनः स्वास्थ्य प्रदान करेगी। इस चिकित्सा की शक्ति मन की सत्ता के ज्ञान के अनुपात पर निर्भर है।

औसत रोगियों में यह ज्ञान अपूर्ण रहता है। वे मनके क्षुद्र पटलों पर धीरे धीरे उतर आते हैं और किसी न किसी कारण से अपनी सत्ता के ज्ञान को भूलसे जाते हैं। बस, चिकित्सक इसी काम तथा सेवा के हेतु है। उसने अपने मन को निश्चित और तीव्र कर रखा और विचारप्रेषण के विज्ञान में सुशिष्ट करके रखा है। अतः रोगी का उपचार करने के समय वह 'तरंगे' उठाता और उन्हें योग्य स्थान पर पहुंचाता है। जब वह तरंगों को रोगी के मन में

पहुंचाता है तब परिणाम में कंप वहां फिरसे उत्पन्न होते हैं और रोगी का विराट मन निदान क्षुद्रमन पर टक्कर जमाता जिससे भाग, अवयव और कोष चैतन्य होकर धीरे धीरे स्वाभाविक दशाएं पुनः स्थापित करदेते हैं।

इस चिकित्सा के भिन्न भिन्न कोटिके मनुष्यों के भिन्न भिन्न सिद्धान्त हैं परन्तु उपरोक्त वर्णन में सब सामान्य विचारों और सिद्धान्तों का समावेश होगया है। चिकित्सा के सब ढंगों की नीव एक प्राकृतिक नियम पर है और सिद्धान्तों की भरमार करके यथार्थता को ढांकने का प्रयत्न करना मूर्खता है। यथार्थ में सर्व चिकित्सक भिन्न सिद्धांत रखते हुये भी रोगियों को ठीक करते हैं। क्या यही एक प्रमाण नहीं है कि वे भिन्न सिद्धान्त रखते हुये भी एक ही बल-शक्ति-का उपयोग करते हैं। हम इन भिन्न सिद्धान्तों के विवरण के पचड़े में नहो पड़ेंगे किन्तु अगले अध्याय में मानसिक चिकित्सा के व्यवहार की स्पष्ट पद्धति देंगे, क्योंकि बर्तन का एक चांवल देखने से पूरे भात की परख हो जाती है। इस पद्धदि को जान लेने से कोई भी चिकित्सा का काम कर सकता है।

अध्याय सत्रहवां

मानसिक चिकित्सा की पद्धतियां

उपचार करने में चिकित्सक को अपने मन में कौन सी भावनाएं रखनी चाहिएं; इसका पूर्णतः सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के लिये अभ्यासी पिछले अध्यायों में दिये हुए उपचारों से सुपरिचित हो जावे। उनमें से वह उन भागों को अपनी रुचि समान चुन लेवे जिन पर उसका मन मुग्ध हो गया हो और बाकी को दूसरों के लिये छोड़ दे। प्रत्येक जन अपनी स्वबुद्धि से काम लेवे तभी उसको लाभ और चिकित्सा सिद्धि प्राप्त होगी।

मानसिक उपचार देने में चिकित्सक को अपने मन में वांछनीय दशाओं का चित्र खींचते आना चाहिए। अर्थात वह मन में रोगी को सस्वास्थ्य और भागों, अवयवों और कोषों को स्वाभाविक क्रियाएं करते हुए देख सके। सारांश, इस चिकित्सा की सफलता स्वाभाविक दशाओं को मानसिक साक्षात करने की शक्ति के अनुपात में रहती है अपने मन से सब संदेह दूर कर दो; वांछनीय दशा को साक्षात करने का अभ्यास करो। प्रतिदिन इस अभ्यास के करने से तुम में आश्चर्य जनक उन्नति शीघ्र होगी और शक्ति एवं चिकित्सा की संवेदना उठकर तुम्हारे शरीर में तरंगित हो उठेगी

विचार-प्रेषण में चिकित्सक को भारी प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है। उपरोक्त मानसिक चित्र बनाने की शक्ति प्राप्त करना ही मुख्य कठिनाई है। एक बार विचार का निरूपण हो जाने से फिर वह केवल भावना धारण करलेने से सरलता पूर्वक प्रेषित किया जासकता है। ज्योंही तुमने भावना की कि वह इस इस तरह जा रहा है; त्योंही वह पहुंचकर काम करने लग जाता है।

जिनलोगों ने यह समझ रक्खा है कि विचार प्रेषित करने में बड़ी एकाग्रता तथा प्रयत्न की आवश्यकता है उनको यह बात विचित्र प्रतीत होगी। यह समझ अशुद्ध है। यथार्थ बात तो यह है कि स्वच्छ मानसिक चित्र बनाने के हेतु ही एकाग्रता की आवश्यकता है। एक बार चित्र निर्मित हो गया कि उसे भेजना या स्थानांतर करना केवल कामना एवं लालसा का काम हो जाता है अर्थात् उसे अमुक तरह जाते हुए मान लेना ही बस है। कोई चिकित्सक अथवा "विचार प्रेषण" में निपुण अपने काम में ऐसी कल्पना करना लाभदायक समझते हैं कि वे मानौ विचार को मस्तिष्क से यथार्थ में अलग होते हुए, अन्तरिक्ष में वस्तुतः यात्रा करते हुए और रोगी के मन में सत्य ही पैठते हुए देख रहे हैं।

उपचार करने में रोगी को, जो तुम्हारे समक्ष हो; पहिले स्वयं शान्त तथा स्वस्थचित्त होने को कह देना चाहिये। तात्पर्य यह, कि यथा संभव उससे एकान्त सेवन कराने का प्रयत्न करना चाहिये। हमारा आशय यह नहीं कि वह सोता रहे। वह यथा संभव शांत होकर अपना चित्त जीवन की खट खट एवं बाहरी रगड़झगड़ से हटा ले। इस काम को करने में तुम्हें शांत तथा निर्जन स्थान ढूंढने का या एक कमरा बनाने का प्रयत्न करना चाहिये और तीव्र प्रकाशों से दूर रहना चाहिये क्यों कि इनसे भी ध्यान उचट जाता है।

एक बार ठीक स्थिति होगई कि तुम्हें चुपचाप तबतक बैठे रहना चाहिये जब तक तुम्हें प्रतीत न हो कि उपचार के लिये तुम्हारी मानसिक स्थिति ठीक है और तुम्हारी तरंगें ठीक मात्रा में उठ रही हैं (तुम्हारा संवेदन ही इसका निर्णय कर देगा)। अनन्तर तुम वस्तुतः उपचार आरम्भ कर सकते हो। पुनः स्वास्थ्य प्राप्त रोगी के मानसिक चित्र से योग्य दशाओं का मन में आदर्श चित्र बनाओ और रोगी के मन में उसे प्रेषित करने का विचार बांधो, मानो तुम उसके समक्ष फोटो-चित्र ही रख रहे हो।

मन में— उपांशु रीति से—शब्दों को कहते हुए तुम मानसिक दशाओं का चित्र बना सकते हो। वांछनीय आदर्श-

स्थिति के मानसिक चित्र का निर्माण करना ही मुख्य काम है। इसे ही सदा याद रखो। अपने रोगी को पूर्णतः स्वास्थ्य सम्पन्न मानसिक रीति से साक्षात करने का प्रयत्न करो और उपचार के समय मन में सदैव उस मूर्ति-चित्र को धारण करने का प्रयत्न करो।

साथ साथ रोगी के लिए उत्तेजना और सलाह के शब्द कहना भला है। तुम्हारे विचार के साथ सहयोग करने के लिए उसके मन की सत्ता के विषय में कुछ उपदेश भी दे देना ठीक है।

परोक्ष उपचार में चिकित्सक ठीक वैसा ही काम करे जैसा कि रोगी समक्ष हो। उसे कल्पना करना चाहिए कि रोगी कमरे में ठीक उसके सामने है और फिर वैसा ही समझ कर उसे उसके साथ बात करना चाहिए। मन ही मन में देखो कि विचार निकल रहे, जारहे और रोगी को पहुँच रहे हैं। बहुत से चिकित्सक परोक्ष उपचार में रोगी से- मानो वह वहां पर उपस्थित हो -बातचीत करते और इष्ट बातें कह देते हैं - मानो वह कमरे में बैठा और सुन रहा हो। इस दूरस्थ संवाद में स्वस्थ्य, शक्ति और चैतन्यता की केवल सूचनाएं हों या प्रत्युत आस्तिकता और सत्यता के कथन हों; जैसे कि अध्यात्मवादियों के होते हैं। यह कहना अनावश्यक है कि प्रेम का चिकित्सक विचार

स्वास्थ्य पुनः प्राप्त करने में बड़ी भारी सहायता करता है। प्रेम का तुम्हारा विचार रोगी के मन को प्रतीकूल विचारों से मुक्त करके झाड़ कर स्वच्छ करदे।

परोक्ष उपचार में यदि रोगी उपचार के समय शांत ग्राहक मुद्रा बना कर बैठे तो बड़ी सहायता होगी। तुम और रोगी दोनों सहमत होकर उपचार का समय नियत करला तो यह बात हो सकती है। यह अत्यन्त आवश्यक किंवा अनिवार्य नहीं है क्योंकि बहुत से चिकित्सक रोगियों का उपचार किसी विशेष समय में नहीं करते परन्तु जब उन्हें उत्तम अवकाश मिलता तब करते हैं।

इस चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षाओं का विवरण देना मानो उन्हीं बातों को बारबार दुहराना है। अतः यह अनावश्यक है। संक्षेप में उपचार 'गुरु' – शिक्षाओं का सार — देदिया गया है यदि तुम इन अध्यायों में दी हुई शिक्षाओं पर ध्यान देओगे तो तुम्हारा मानसिक उपचार अत्यन्त शक्ति तथा प्रभावशाली हो सकेगा। इन्हीं बातों को बार बार दुहराने से एक पुस्तक बन सकती है। परन्तु इससे क्या?

इस पुस्तक का पूरा पाठ अध्ययन और मनन किया जावे क्योंकि एक पद्धति का सम्बन्ध दूसरी से लगा हुवा है। हरएक का विवरण देते बैठने से एक के बदले दो चार

पुस्तकें बन सकती हैं। अतएव कृपया स्मरण रखो कि तुम्हें यहां दी हुई शिक्षाओं से पूरा लाभ उठाने के लिये स्वयं सब प्रकार की वर्णित पद्धतियों से परिचित होजाना चाहिए अस्तु।

अध्याय अठारहवां

अध्यात्मिक चिकित्सा

इस संज्ञा का दुरुपयोग करके भिन्न भिन्न लोग इस पुस्तक में दी हुई प्रायः सब चिकित्साओं का वर्णन करते हैं।

निःसन्देह मनोवैज्ञानिक ढंग से चिकित्सा करने वाले प्रत्येक पुरुष को अपनी चिकित्सा को यह संज्ञा देने का अधिकार है क्यों कि इसका अर्थ "भौतिकातीत" है; किन्तु इस संज्ञा का सामान्य गृहित अर्थ "आत्म सत्ता-ज्ञान" है। इस का अर्थ दृष्टि से केवल उसी चिकित्सा को यह "नाम" दिया जा सकता है जिससे रोगी के मन में दृश्यातीत अगोचर आत्मसत्ता की-विश्वम्भर आत्मा की-यथार्थता जमजाती है। जिसमें आत्मसत्ता का यथार्थ अनुभव करने का सामर्थ्य है वह यदि उसका प्रयोग करना भी जानता हो तो वह स्वकीय और परकीय दोनों चिकित्साओं में चमत्कार दिखला सकता है। परन्तु यह प्रयोगात्मक ज्ञान उन लोगों में सदा दृष्टि गोचर नहीं होता जो उच्चतर चेतना में लीन होजाया करते हैं; और याथार्थ में ऐसे कई लोगों में भौतिकशरीर को तुच्छमानने की निश्चत प्रवृत्ति पाई जाती है। वे जड़ शरीर पर ध्यान

देना योग्य नहीं समझते; परन्तु सदा उसी उच्चतर चेतना में लीन रहते हैं। यह स्थिति भी अशुद्ध है क्यों कि पार्थिव शरीर ही "अहंकार"– आत्मसत्ता–को प्रकट करने में बड़ा भाग लेता है और उसका तिरस्कार करना मानो प्राकृतिक नियम के–विश्वधर्म के–प्रतिकूल चलना है।

अध्यात्मिक चिकित्सा की इस रीति की यथार्थ क्रिया उच्च चेतना का निम्नतर पटलों पर अधिकार प्रकट करना है। यह उच्च चेतना इन पर शाशन करके ही अपनी शक्ति प्रकट करती है। परन्तु निदान यह दीखेगा कि आराम होने का मुख्य कारण यथार्थतः मन की ऊंची चेतना की व्यक्तता है। जब मन इस ऊंची चेतना के ध्यान में संलग्न हो जाता है तब वह निम्न पटलों की क्रियाओं से सम्बन्ध तोड़लेता है और वे किसी आपत्ति के बिना सुस्थापित विश्वनियमों के अनुसार परिणामतः क्रियाएं करने लगते हैं। प्रतिकूल विचार व्यर्थ नित्यशः बीच बीच में आकर उनके कामों में विघ्न डालदेते हैं। कई लोगों में इन्हीं विचारों के कारण अस्वाभाविक दशाएं उत्पन्न हो जाती हैं।

उच्चतर प्रकृति का अनुभव लेने से और उसके साथ एक होने से भय और त्रास के विचार मिट जाते हैं। इनका प्रभाव विषाक्त होता और बहुत से लोगों में बीमारी

उत्पन्न कर देता है। भय के विचार की बाधा अलग होजाने से प्रकृति अपना काम स्वच्छन्द और स्वतंत्र करती है।

अगले दो अध्यायों में इस चिकित्सा सम्बन्धी उत्तर रूपों का वर्णन किया जावेगा। इस अध्याय में वे बातें लिखी जांयगी जिन्हें चिकित्सक लोग रोगियों को बतला- देते हैं।

अन्त में लिखी हुई इन रीतियों में भी चिकित्सक अज्ञात रीति से मानसिक चिकित्सा या सूचना या दोनों को काम में लेता है। अध्यात्मिक संवाद के बाद होने वाले उपचार में सदा मानसिक चिकित्सा या सूचना अवश्य काम में लाई जाती है, चाहे चिकित्सक इसे न जाने या क्रोधपूर्वक अस्वीकार करदे और कहने लगे कि यह उप- चार उससे अत्यन्त भिन्न है। परन्तु मनोवैज्ञानिक चिकि- त्सा के अभ्यासी तुरन्त ही मानसिक चिकित्सा और सूचना को ताड़सकते हैं, चाहे वह कई आवरणों से वेष्टित करदी गई हो। सब एक ही सामान्य सिद्धान्त से काम लेते हैं। इसका उत्तम प्रमाण यह है कि इस चिकि- त्सा के भिन्न भिन्न ढंगों के अभ्यासी प्रायः एक ही सा आराम पहुंचाते हैं, चाहे उनके सिद्धान्त और संप्रदायें कितनी ही भिन्न क्यों न हों? निसन्देह वे सब एक स्वर से "एक जीवन" और "आत्मा" में विश्वास मानते हैं परन्तु वे बड़ी तेजी से एक दूसरे को "संदिग्ध" कहते हैं।

इतना सब कुछ होने पर भी वे अपना काम करके लोगों को आराम पहुंचाते ही जाते हैं। ईसाई वैज्ञानिक संस्थाएं और उनके विरुद्ध संस्थाएं दोनों बराबर अच्छी चिकित्सा का काम कर रही है। इससे यही निश्चित होता है कि सभी कोई "एक चिकित्सा बल" का प्रयोग करते हैं और वह किसी विशेष वर्ग की बपौती नहीं है।

'एक जीवन' की "शक्ति" सदा अस्तित्व में है और वह सदा काम करने को उद्यत और इच्छुक रहती है, चाहे जो उसको काम में लावे। उसे विशेष विश्वास, सिद्धान्त अथवा सम्प्रदाय से कुछ प्रयोजन नहीं। वह सब के पास है और सब की सहायता करती है। धूप और मेह के समान वह सब पर बराबर गिरती है, जो उसके क्षेत्र में आते और उसे आकर्षित करते हैं। वह सब के लिए सब कुछ है। 'अनंत' के विचार के सामने संप्रदायों के भिन्न सिद्धान्त और भेद उपाहसनीय हैं। हम कितने ही उत्तम क्यों न हों किन्तु हमारा यह दावा करना कि हम ही सत्य-सर्वसत्य-ज्ञाता हैं और बाकी के सब भ्रम में पड़े हैं, निपट लड़कपन है। सच बात तो यह है कि अपनी अपनी समझ के अनुसार सभी सत्य या सत्यांश ज्ञाता हैं और कोई भी "पूर्ण सत्य" का ज्ञाता नहीं है।

सत्यशोधक व्यक्ति का "अनन्त शक्ति और प्रेम" पर समान अधिकार है जैसा कि 'सर्वज्ञता' का दावा

करने वाली संस्था या संप्रदाय का। संप्रदायें तो पैदा होती, बढ़ती, गिरती और काल के मुख में लीन होती हैं। यही हाल संस्थाओं, मतों और वर्गों का होता है। सब की उत्पत्ति, बढ़ती और मृत्यु होती है। सब विकास के नियम में बंधे हुए हैं। युग, लोग, जातियां, देश, संस्थाएं, मत, वर्ग, धर्म संप्रदायें, नेता इत्यादि पैदा होते और मरते हैं—ऐसा होना ही चाहिए—परन्तु नियम शाश्वत निर्विकार, निर्गुण, अच्युत, अटल, निःसीम, निरंजन रहता है। नियम सब पर सत्ता चलाता है; सब उसको सत्ता को मानते हैं। कोई भी पूर्ण उस के प्रतिनिधि तथा मुखतियार नहीं हैं। वह सब से काम लेता और तिसपर भी सब के काम आता है। जब यह रहस्य समझ में आजाता है तब शांति सुलभ हो जाती है।

जो उच्चतर शिक्षा को थोड़ो भी नहीं समझते उन्हे इस अध्यात्मिक चिकित्सा को बतलाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।

समझने वालों और इस पध्दति से स्वकीय तथा परकीय चिकित्सा करने को इच्छुक जनो को केवल यही नियम दिया जाता है कि शान्त स्थान में जाकर निजभ्यास करें— सत्य रूप का चिन्तन करें। जब 'आत्म साक्षात' आवे तब स्वकीय या परकीय चिकित्सा योग्य शब्दों में

करो और यथा सम्भव विचार को पहुँचाओ (शब्दों द्वारा उसे पूरा प्रकट करना या पहुंचाना असम्भव है)। यदि तुम न कर सको तो निम्न दिया हुवा शब्द-योजना का नमूना काम देगा।

उपचार

'हे आत्मन् .अद्वैत, अजन्म, अमर, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान,-जिसके जीवन सिंधु में मैं एक बिन्दु हूँ-मुझे तेरा अस्तित्व और सत्ता प्रकट कर। मुझे अधिक अनुभव लेने दे कि तू कौन है और मैं तुझ में क्या हूं ? तेरी और मेरी सत्यता की चेतनता मेरे शरीर में भिद जावे और मेरे मन के सर्व पटलों पर उपस्थित होवे। आत्मसत्ता मेरे मन द्वारा इस शरीर में भिद कर प्रकट होवे। मैं चाहता हूँ कि इसे (शरीर जिसको कि अभिमान वश मैं "मैं मैं" पुकारा करता हूँ) आराम हो; स्वास्थ्य, बल और जीवन प्राप्त हो जिससे यह तुम्हारे (आत्मा के) रहने योग्य मन्दिर बनजावे और धारा प्रवाह में बहने वाले अखंड जीवन को प्रकट करने योग्य एक अच्छा हथियार बन जावे। निम्नतर पटलों के स्थूल कंपों से-कर्कश रगड़ झगड़ से-इस शरीर को उठाकर अध्यात्मिक मन के उच्चतर सूक्ष्म कंपों में लेजाओ, जिससे उनके द्वारा मैं "तुझे" जानूं। इस शरीर को मन के द्वारा, जो उसे चैतन्य रखता है, वह शांति, बल और जीवन दो, जिस पर उसका जन्म

सिद्ध अधिकार है। हे सर्व जीवन, तू इस 'भाग'-शरीर में भी अपना सार बहा दे, जिससे यह पुनर्जीवित तथा पुनः प्रफुल्लित हो उठे। हे सर्वात्मन्! मैं तुझसे यह अपना जन्मसिद्ध अधिकार मांगता हूं। तेरी प्रतिज्ञा और मुझे दिये हुए अन्तरिक ज्ञान के कारण मैं अब इसे तुझसे मांगता हूँ।

इसके बदले में या साथ-साथ तुम नाना वैज्ञानिक संस्थाओं के "अस्तित्व सम्बन्धी कथनों को" काम में ला सकते हो, क्योंकि वे सब साधुवाद हैं। पर, सदा यह ध्यान में रक्खो कि केवल शब्दों में कोई जादू नहीं है और विशेष शब्द किसी भी संप्रदाय की बपौति नहीं हैं। शब्द तुम्हारे और सब के लिए सामान्य हैं परन्तु उनके अन्तर्गत भाव में मुख्य सद्गुण रहता है। शब्द आते, जाते और बदलते हैं परन्तु उनसे प्रकट होने वाला भाव और अनुमान शाश्वत रहता है। इसके साथ अगले दो अध्यायों को भी पढ़ डालो।

अध्याय उन्नीसवां

आध्यात्मिक चिकित्सा

चिकित्सा का यह उच्चतम रूप उतना सुलभ नहीं है जितना कि साधारण जनों ने समझ रक्खा है। मानसिक चिकित्सा के ढंगों पर अच्छे काम करने वाले चिकित्सकों का विश्वास और उपदेश है कि उनका काम आध्यात्मिक तत्वों पर किया जाता है। परन्तु यह उनका भ्रम मात्र है। ऐसी दशाओं में चिकित्सक एक माध्यम-हथियार- बन जाता है जिसके द्वारा विश्व का आध्यात्मिक चिकित्सा-बल प्रवाहित होता है अर्थात चिकित्सक अपने अंतःकरण को विश्वधारोन्मुख कर सकता और उस प्रवाह को रोगी के अन्तकरण में डालकर ऐसे तीव्र और तीक्ष्ण कंप उत्पन्न कर सकता है कि उसके निम्नतर मानसिक पटल क्षुब्ध हो उठते और अन्त में भाग और अवयव स्वतः स्वाभाविक स्थिति पुनः प्राप्त करने में दत्तचित हो जाते हैं। आध्यात्मिक रीति से आराम बहुधा तत्काल होता है; यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि सदैव ऐसा ही होना चाहिए।

इस पध्यतिका चिकित्सक "अध्यात्मिक संजीवन बल" अपने द्वारा प्रवाहित कर उसकी धारा से रोगी को तर बतर-स्नान- कर देता है

इस उपचार को अच्छी तरह से समझने के लिये पाठक को योग शिक्षा के नानाविध मानसिक तत्वों से सुपरिचित होजाना चाहिए। अध्यात्मिक मन के संबंध में कुछ वर्णन कर देना भला है जिससे यह उपचार कुछ अधिक समझ में आजावे।

मनुष्य के मनका "आध्यात्मिक तत्व" निम्नतर मन और बुद्धि तत्वों के परे रहता है। जिस प्रकार बुद्धि से निम्नतर मन है, उसी प्रकार उस 'तत्व' से बुद्धि निम्नतर है। औसत मनुष्यों में यह 'तत्व' अभी विकसित नहीं हुआ है अर्थात अभी सुप्त दशा में पड़ा है यद्यपि मानव जाति के कुछ अधिक उन्नत जनो ने — जो इस पंथ में अपने भाइयों से आगे बढ़े हुए हैं — इस 'तत्व' को जाग्रत कर लिया है या यों कहो कि चैतन्यता के केन्द्र को इस 'तत्व' के भूमि-पलट पर पहुंचा दिया है। यही उच्चतम 'तत्व' "आन्तरिक प्रेरणा" है जो आत्मरक्षा कराती और आवश्यकता के समय सचेत करती या सुमंत्र देती है। जो कुछ हम जाति में कुलीन, उच्च और उदात्त विचार देखते हैं वे सब इसी 'तत्व' से आये हैं। आध्यात्मिक मन निम्नतर पटलों में सत्यांश प्रेरित किया करता है। इसी 'तत्व' के धीरे धीरे जाग्रत होने से उन्नत जाति में कुलीनता, सत्य धार्मिक विचार, दया, सहानुभूति, न्याय, शुद्धप्रेम, भूतदया, आत्म

त्याग आदि गुणों का प्रचार होजाता है। ज्यों ज्यों जाग्रति होती जाती त्यों त्यों मनुष्य में न्याय बुद्धि बढ़ती और वह अधिकाधिक दया दिखलाता है। उसमें विश्व भ्रातृता-प्रेम-का विचार बढ़जाता, उसमें प्रेम की भावना तीव्र हो जाती और उसमें सर्व सम्मत साधुगुणों की अच्छी वृद्धि हो जाती है। वह "संत-महात्मा" बन जाता है।

यही तत्व उस "आन्तरिक प्रेरणा" का उद्गम है जो सब युग के कवियों में, चित्रकारों में, शिल्पियों में, लेखकों में, उपदेशकों में, वक्ताओं और अन्य जनों में पाई गई है। यही आज भी लोगों में उत्पन्न हो सकती है। इसी से दिव्य द्रष्टा अपनी दृष्टि पाते हैं — पैगम्बर अपनी दूर दृष्टि पाते हैं। बहुतसोने इसपर ध्यान जमा कर इस उद्गम से दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया है, जिसे वे कहते रहे कि उन्होंने अन्य लोक से, दूतों से, फिरिस्तों से, स्वयं ईश्वर से पाया है; परन्तु यह सब ज्ञान भीतर से ही आया है अर्थात उन की सर्वोपरि चैतन्यता-आत्मा-प्रस्फुटित हो उठी है। इसका आशय यह नहीं कि मनुष्य अन्य उपरोक्त माध्यमों द्वारा कभी भी संदेशे नहीं पाता है; प्रत्युत हम जानते हैं कि ये विभूतियां भी बहुधा साक्षातकार होकर अनुभव में आजाती हैं। परन्तु हमारा अभिप्राय यही है कि मनुष्य अन्य माध्यमों की अपेक्षा इस उदात्त तत्व से अधिक

संदेश पाता है और भ्रम से एक को दूसरी बात मानलेना मनुष्य का स्वभाव है। इस पर विवाद करना इस पुस्तक का प्रयोजन नहीं है।

इसके विकास से मनुष्य अपनी प्रकृति के उदात्त भाग के संबंध में आजाता है और इस तरह इंद्रियां वीत एवं बुद्धि से परे ज्ञान का अधिकारी हो जाता है। इस तरह मनुष्य को कुछ और उन्नत शक्तियों का द्वार खुल जाता है (उसमें अणिमा, महिमा आदि अष्ट सिद्धि, नव निधि आजाती हैं) परन्तु उसको इन शक्तियों को मनुष्य कल्याण को छोड़ कर अन्य कामों में लगाने से सावधान रहना चाहिए क्योंकि इन शक्तियों के ऐसे व्यभिचार से साधना में भयंकर परिणा होते हैं। यही नियम है।

यद्यपि यह सत्य है कि औसत मनुष्यों को यह चिकित्सा पूर्ण मात्रा में नहीं प्राप्त होती, तो भी यह भी सत्य है कि आध्यात्मिक ज्ञान के कुछ अंश से संपन्न चिकित्सक अपने परिजनो के उपचार में इस दिव्य शक्ति का अंशतः प्रयोग कर सकता है। यथार्थ में उत्तम कोटि के चिकित्सक ज्ञात या अज्ञात रीति से इस शक्ति का प्रयोग करते ही हैं; और वे यह काम ठीक ही करते हैं – यह शक्ति का सदुपयोग है। इस पुस्तक में वर्णन की हुई अन्य रीतियों के साथ वे इसका मेल कर सकते हैं। इसमें कोई विक्षेप नहीं होता। यथार्थ सर्व विचारशील चिकित्सक रोगियों को नियमित

उपचारों के साथ साथ इस उपचार से भी लाभ पहुँचाने का प्रयत्न अवश्यमेव करें। सुभावना से किया हुवा उपचार का पीड़ित जनता के कष्टों के निवारण में कभी भी दुष्परिणाम नहीं होगा। अतएव चिकित्सक कभी न डरे कि वह ऐसा करने में अध्यात्मिक मन को जड़ता पर ढकेल रहा है क्योंकि आत्मा सब को व्याप्त कर रही है और यदि वह निम्नतर पटलों को सुधारे तो यह उसका सदुपयोग ही होता है।

अगले अध्याय में इस चिकित्सा के अभ्यास संबन्धी कुछ सूचना और कुछ स्पष्टीकरण देने का प्रयत्न किया जायगा, यद्यपि किसी को किसी काम के करने की रीति शब्दों द्वारा अच्छी तरह से वतला देना प्रायः असंभव है।

विद्यार्थी को इस विषय का अभ्यास यथेष्ट श्रद्धा एवं निष्ठा से करना चाहिए क्योंकि अध्यात्मिक चिकित्सा में मनुष्य को प्रति दिन के अनुभव में आने वाले बल से निपट भिन्न अलौकिक वल और शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। आत्मा के अपार सागर से रोगी के अन्तः करण में बल पहुंचाने के लिए चिकित्सक को अपने आप माध्यम वन जाना पड़ता है। उसे इस शक्ति तथा तत्व का योग्य माध्यम -हथियार-बन जाने के लिये प्रयत्न करना चाहिए।

अध्याय बीसवां

आध्यात्मिक चिकित्सा का अभ्यास

अध्यात्मिक चिकित्सक उस महाशक्ति में पूर्ण श्रद्धा तथा निष्ठा रख कर उपचार आरम्भ करे जिसे वह अपने द्वारा रोगी की सहायता और विश्राम के लिये प्रवाहित करना चाहता है। उसे प्रथम अपना शरीर और मन शांत करना चाहिए और यथा संभव अपनी पेशियों और ज्ञान-तन्तुरेखाओं को दबाव और संकोच से मुक्त करना चाहिए और फिर भौतिक जीवन की चिन्ताओं, आपत्तियों और कामनाओं को मन से दूर हटा देना चाहिये। उसे वह शांत गंभीर और आनन्दित मुद्रा धारण करना चाहिए जिस पर ' अध्यात्मिक मन " किंवा " आत्मा " को समझने वाले प्रत्येक पुरुष का जन्म से अधिकार है। उसे उस मानसिक स्थिति में पहुंचने का प्रयत्न करना चाहिए जहां वह " आत्म सिंधु " की समीपता का अनुभव करता है। उस सिन्धु का वह एक बिन्दु मात्र है। उसे " असीम " के साथ "सम-राग" अनुभव करने का प्रयत्न करना चाहिए।

हम इस स्थिति का ठीक ठीक वर्णन शब्दों द्वारा नहीं कर सकते। इसको समझने के लिये अनुभव कर लेना आवश्यक है। परन्तु हमे प्रतीत होता है कि जिन्हें इस

पुस्तक ने आकर्षित किया किंवा जो स्वयं इस पर मुग्ध हुए हैं वे हमारे आशय को पर्याप्त रीति से समझ चुके होंगे और वे ही इस स्थिति को प्राप्त करने का दीर्घ प्रयत्न करेंगे।

चिकित्सक को जैसा योग्य दीखे वैसा वह करे अपने हाथ रोगी पर रखे या न रखे। कोई रोगी का स्पर्श नहीं करते किन्तु अन्य स्वभावत स्पर्श करना आवश्यक मानते हैं। इसमें तुम अपने विवेक से काम लो। 'आत्मतत्व' के प्रवाह को डालने वाले मनुष्य के स्पर्श करने में कुछ एक बात रहती है जो अपने साथ एक निश्चित बात रहती जो अपने साथ एक निश्चित अवर्णनीय बल लेजाती है। जीजस (ईसामसीह) और उसके शिष्यों ने (भारत में कई संत महात्माओं ने) बहुधा स्पर्श करके इस आध्यात्मिक शक्ति द्वारा लोगों को आराम पहुंचाया। यदि तुम्हें स्पर्श करने की उमंग होतो रोगी पर अपने हाथ रखने में संकोच मत करो। उपचार करते समय कदापि गर्व मत रखो और न अपने पर उत्तरदायित्व का बोझ लेओ किन्तु मन में यही भाव बना रक्खो कि तुमतो उस महाशक्ति के प्रवाहार्थ माध्यम बने हुऐ हो। ज्योंही तुम अहंकार करने लगोगे कि "मैं उपचार का कार्य कररहा हूँ" त्योंही उस शक्ति का प्रवाह रुक जायेगा और अन्यत्र चला जायेगा। कई अच्छे चिकित्सकों ने इस तरह गर्व करके अपनी निपुणता को नष्ट करडाला है।

अधिक गर्व से अथवा अहंमान्यता (अपने आपको महात्मा समझने) से यह आरंभ में आई हुई शक्ति एक दम लुप्त होजाती है इसी तरह लोकमान्यता तथा अधिक प्रसिद्धि से यह मिट जाती है (जहां कोई चमत्कार देखते हैं तो लोग उसपर टूट पड़ते हैं और उसका बड़ा आदर करने लगते हैं, पर चमत्कार के कम होतेही वे उसका मान गिरादेते हैं, अर्थात लोगों में अधिक प्रसिद्ध होजाने पर अवनति अवश्यमेव आजाती है)। हमने ऐसे कई विचित्र उदाहरणों का अनुभव लिया है और पाठकों को भी अवश्य हुआ होगा। अतः इस उपचार में इस हानि प्रददोष से—गर्व; अहंमान्यता ; लोक—प्रसिद्धि से —सावधान रहो। यही याद सदा रखो, कि " तुम " आराम नहीं पहुंचाते परन्तु " आत्मा " पहुंचाती है।

इसकी उत्तम रीति महाशक्ति के प्रवाहार्थ अपने आप को एक योग्य माध्यम बना लेना है। मनमें यही विचार दृढ़ करो कि तुम माध्यम हो जिसके द्वारा " वह चिकित्सा शक्ति " जारही है और मनही मनमें उसका बहना और निकलना देखो। यह उपचार देरतक न रहे। इसकी अवधि-का मान वह अपनी बुद्धि से स्थिर करले। कुछ काल तक इसका अभ्यास करने से बहुधा ऐसी निपुणता प्राप्त होजाती है कि चिकित्सक और रोगी दोनो को शक्ति के प्रवाह का यथार्थ अनुभव हो सकता है। ऐसी स्थितिमें निश्चय रखो कि उत्तम दशाएं प्राप्त होचुकी हैं।

चिकित्सक और रोगी दोनो की मानसिक स्थिति उपचार के समय ठीक रहना चाहिए। इस से उन दोनो के मन "शक्ति" के प्रवाह के लिये योग्य माध्यम बनजाते हैं। इस प्रकार की पारस्परिक मानसिक स्थिति प्राप्त करने के लिए यह ठीक होगा कि चिकित्सक रोगी को इस विषय की पुस्तकों से-धर्मग्रंथों से—कुछ पढ़कर सुनावे। इस से दोनो के मन अधिक जड़ पदार्थों के विचारों से कुछ काल को मुक्त होजाते हैं और उपचार हेतु योग्य स्थिति में आजाते हैं।

इस उपचार में यह आवश्यक अथवा वांछनीय नहीं है कि चिकित्सक अपने मनमें आराम-स्वास्थ्य-के किसी विशेष रूप का "विचार बांधे" जैसा कि 'मानसिक चिकित्सा' में करना पड़ता है। महाशक्ति रोगी के शरीर में उसके "आत्मतत्व" द्वारा भिदजाती और सर्व-पूर्ण-सुधार कर डालती है। वह भिन्न भिन्न अवयवों से पृथक प्रयोजन नहीं रखती। रोगी शक्ति की धारा से तर बतर होजाता है और प्रत्येक कोषाणु उसकी उपस्थिति को जानकर उत्तेजि होजाता है।

यही सब कुछ है जो कि इस विषय में कहा जा सकता है। जैसे तुम उन्नति करोगे वैसे तुम ही बाकी को खोज निकाल लोगे। यदि तुम सद्भावना से करो तो इस उपचार को करने में कभी मत डरो। कुछ काल में तुम इस शक्ति

को प्रकट करने के हेतु एक महान माध्यम-केन्द्र बन जाओगे और तुम्हारा काम उत्तरोत्तर सुन्दर होता जायगा।

जो लोग इस पुस्तक में दिये हुए अन्य उपचारों को पसन्द करते या अपने रोगियों की वृत्तियों या स्थितियों के कारण काम में लाना ठीक समझते हैं उनसे हमारा कहना है कि वे अन्य उपचार के अन्त में निदान एक दो पल अध्यात्मिक उपचार में देवें। जैसा वे उत्तम समझें वैसा रोगी को यह बात कह दें या न कहें। इसमें धोखे का कोई काम नहीं क्योंकि 'आत्मा' सब की है और सब उसके हैं। इस लिये यदि चिकित्सक रोगी को बिना कहे आत्म-शक्ति का उपयोग करना चाहे तो उसका ऐसा करना न्याय संगत है। कोई रोगी इसको प्रेत-वीर-विद्या समझ कर इसके नाम से ही चिढ़ जाते हैं। अतः ऐसे मनुष्यों के साथ बात करने में इस शब्द का उपयोग करना मूर्खता है। कोई किसी भी 'आत्म' संबंधी बात में सदा धार्मिक बातों की ही गंध देखते हैं और उसे अपने धार्मिक विश्वासों के विपरीत मानते हैं। निसन्देह ये दोनों भावनाएं अशुद्ध विचारों पर निर्भर हैं और ऐसे लोगों को इसे समझाने बैठना व्यर्थ है। ऐसे लोगों को अन्य उपचार विशिष्ट शब्दों को उच्चारते हुए देना ही अधिक अच्छा है। रोगी को बिना कहे 'आध्यात्मिक चिकित्सा' से लाभ पहुँचाना श्रेयस्कर है। चिकित्सक जो कुछ उत्तम बात दे सकता है

उसके लेने में रोगी का अज्ञान आड़े न आवे। निसंदेह इस सम्मति में हमारा यह विचार नहीं है कि वंचकता अथवा असत्यता का व्यवहार किया जावे परन्तु चिकित्सक को यही याद दिलाना चाहते हैं कि ऐसे शब्दों को उच्चार कर रोगियों को चिढ़ा देना मूर्खता और निरर्थकता है जिन्हें उन्होंने या तो विपरीत या आधा ही समझ रखा है इनके ऐसे भ्रमात्मक और संदिग्ध विचारों से तुम्हारे अच्छे काम में बाधा पड़ेगी।

अध्याय इक्कीसवां

सार-मन्त्र

हम पाठकों को मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के नाना रूपों के सिद्धान्त और व्यवहार से परिचित करा चुके अब हम वर्णित चिकित्सा शक्ति के अभ्यास के संम्बन्ध में कुछ थोड़े शब्द कहना चाहते हैं।

पहिले तो तुम भूल करके भी गर्भित मत हो और मन में चिकित्सा के संकीर्ण विचार मत रखो। दवा दारू तथा जड़ी बूटी के व्यवहार करने वालों की चाल मत चलो और अपने विपत्तियों का अपमान तथा तिरस्कार मत करो। विस्तृत, उदार और स्वतंत्र विचार रखो। सबको वैसी ही विचार स्वतन्त्रता दो जैसी कि तुम अपने लिये चाहते हो। अपने विचारों को दूसरों में मत ठेलो परन्तु सदैव तत्परता से नम्र तथा श्रद्धालु प्रश्न कर्ता को उत्तर देदो।

दवादारू करने वालों की निन्दा मत करने लगजाओ। किसी भी दृष्टि से यह काम ठीक नहीं है और केवल एक ढंग से (पालिसी से) ऐसा करना तो नीरी मूर्खता है। अपना काम इतना अच्छा करो कि लोग उसके लिये तुम्हें ढूंढ निकालें और दूसरों की निन्दा करके अपने व्यवहार

(काम) को बनाने का प्रयत्न मत करो। बहुत से वैद्य (दवा दारू करने वाले) उदात्त विचारवान मनुष्य हैं और चिकित्सा के सूक्ष्मतर रूपों से पूर्ण हार्दिक सहानुभूति रखते हैं परन्तु वैद्य संस्थाओं के आतंक से तथा सर्वमान्य पूर्वजनित संस्कार से वे उसको पूर्णतया प्रकट करने में असमर्थ रहते हैं। ऐसे वैद्य दवा तो देते हैं क्योंकि उन्हें ऐसा करना पड़ता है; परन्तु वे रोगी को न बतला कर उसी समय मानसिक चिकित्सा करने का भी प्रबन्ध कर लेते हैं। बस, इसी तरह बहुत से मौनी वैद्य सफलता प्राप्त करते हैं। परस्पर वैद्य भाइयों की निन्दा करने वालों की, मानसिक या अध्यात्मिक चिकित्सा से घृणा करने वालों की, मंत्र तंत्र या झाड़ फूंक विशारदों को तुच्छ गिनने वालों की कथा — क्यों? उनका नाम ही मत लो। वे आप अपनी निन्दा और घृणा का फल चखेंगे। अतः तुम भूल कर भी उनके मार्ग पर मत चलो। उनके साथ निष्क्रिय विरोध का अभ्यास करो और तुम देखोगे कि यह क्रियात्मक विरोध की अपेक्षा कई गुना अधिक प्रभावशाली होगा। अध्यात्मिक विद्या के सब विद्यार्थियों को यह सत्यता अवगत है और यह मानविज्ञान के अन्तर्गत एक अत्यन्त व्यवहारिक मंत्र है।

पूर्व अध्याय में दिये हुए शरीर के प्राकृतिक नियमों पर ध्यान देने में मत चूको। यह देखो कि रोगी अपने शरीर के प्राकृतिक नियमों का पालन करता है। क्यों कि इससे तुम अधिक कम समय में अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकोगे। किसी भी चिकित्सा को प्रभावशाली बनाने के पहिले यथेष्ट पोषण और उचित मलमूत्रोत्सर्ग होना चाहिए। यद्यपि रोगी अत्यंत शक्ति शाली अध्यात्मिक चिकित्सा से भी अच्छा कर दिया गया हो तथापि, यदि वह आवश्यक प्राकृतिक नियमों के पालने में असावधानी किया करे तो कभी न कभी पुनः रोग ग्रसित हो जावेगा। इस तथ्य को बहुत से वैज्ञानिक चिकित्सक भूलजाते या अस्वीकार कर देते हैं, पर विश्वास रक्खो कि यही शुद्ध सत्य है और यह सदा तथा सर्वत्र पूर्णतः क्रियाशील दृष्टि गोचर होगी। सामान्य बुद्धि भी इस बात की शुद्धता दिखा देगी। शुतरमुर्ग के समान मत होओ और अपना सिर छुपाओ इससे तुम भौतिक नियमों की सत्यता को न देख सकोगे। अध्यात्मिकवाद तुमको इतना ग्रस्त न करले कि तुम भौतिक नियमों को पहिचानना अस्वीकार करदो। यह स्थिति उतनी ही सामान्य बुद्धि के विरुद्ध है जितनी कि अध्यात्मिक महान सत्वों को देखने से मुंह मोड़ने वाले वैद्यों की है।

रोगियों के लिए प्रेम और दया की मूर्ति बन जाओ परन्तु झूठी सहानुभूति से उनकी दशाओं को ग्रहण मत करो या अपनी जीवन शक्ति उनमें प्रवाहित करो क्यों कि इस का प्रभाव ठीक नहीं होगा। इस वृत्ति को दूर करो और रोगी के लिए न "निष्क्रिय" बनजाओ और न "उदासीन"। उसके साथ "क्रियात्मक" और "मित्रवत" सम्बन्ध रखो अन्यथा तुमको कुछ रोगियों में "बल पूर्वक रक्त चूसने-लाभ उठाने-के" प्रभाव दीखेंगे। ऐसे लोग चिकित्सक की शक्ति चूसना अधिक चाहते हैं जिससे उनको लाभ या शक्ति प्राप्त हो। उन्हें तुम अपने ज्ञान और दक्षता से लाभ पहुँचाओ परन्तु अपना जीवन तथा जीवनबल चूस कर आत्मसात मत करने दो क्योंकि यह तुम्हारी संपत्ति नहीं है अतएव तुम उनकी दशाओं को या मानसिक व्यथाओं को अपने में स्थान मत ग्रहण करने दो। दांभिक सहानुभूति से सावधान रहो।

सर्वशक्ति के भंडार के निकट जितनी तुम्हारी चेतनता रहेगी उतनी ही अधिक तुम्हारी चिकित्सा शक्ति रहेगी। यह सदा याद रखो कि विश्वशक्ति का मूल वही अनन्त शक्ति है जो सर्व शक्ति और सत्ता का उद्गम है। याद रखो कि तुम भी इस अनन्त शक्ति के एक अंश हो और जो कुछ

तुम में "सत्यता" है वह सब उसी की कृपा से - उस निर्मल भूति के सम्बन्ध से है। इसी का पूरा अनुभव लेने का प्रयत्न करो और तुम्हें ज्ञान होगा कि अनुभव के साथ तुम में ऐसी अभूतपूर्व शक्ति और सत्ता का प्रादुर्भाव होगा। जिसे तुम अन्य उपायों से पहिले प्राप्त करने में सदा असफल रहे। यही सब यथार्थ शक्ति का स्थान है और प्रत्येक खोजक के लिये उन्मुक्त है।

उपचार के पहिले यदि निम्न मन्त्र का पाठ किया जावे तो बड़ा लाभ होगा।
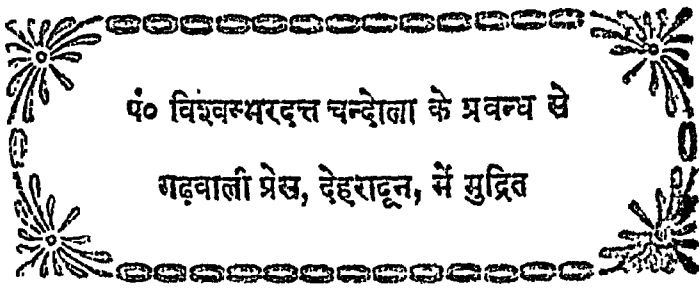
मन्त्र

हे महान् अनन्त शक्ति, जीवन के महाप्रकाश जिस का कि मैं एक स्फुलिंग हूँ, मैं अपने को तेरी चिकित्सा शक्ति की ओर उन्मुख करता हूँ जिससे वह मेरे द्वारा प्रवाहित होकर इस भाई (बहिन) को बलवान बनावे, नवीन काया दे और संपूर्ण जीवनमय करे। तेरी शक्ति मेरे द्वारा अन्त तक बहने दे जिससे वह तेरी चैतन्य शक्ति, बल और जीवन प्राप्त करे और इसके आधार पर स्वास्थ्य, पौरुष और स्फूर्ति प्रकट करे। मुझे तेरी शक्ति के प्रवाहार्थ योग्य माध्यम बनाले और मानवी कल्याण के काम में लगाले। मेरे चिकित्सा के काम में तेरे साथ शांति हो।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः शुभम् भूयात्।

(या वेद मन्त्रः- वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्य वर्णन्तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वातिमृत्युमेतिनान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

भर्तृहरि आश्रम
का
आध्यात्मिक मंडल

हमारे पास घर बैठे आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये कई महानुभावों के पत्र आया करते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह मण्डल स्थापित किया गया है; जिससे सब कोई घर बैठे शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर सकें और अपने शारीरिक और मानसिक दुखों से मुक्त होकर आनन्दमय अन्तर जगत में प्रवेश कर सकें।

कोई भी सदाचारी उत्सुक पुरुष इस मंडल का सदस्य बन सकता है।

जिनका विचार दृढ़ हो, जो परिश्रमी हों और स्व उपकार तथा परोपकार करना जिनका ध्येय हो वे ही सदस्य बनने के लिये साहस करें।

जो सज्जन उपरोक्त बातों से सहमत हों और इस मंडल में प्रवेश करना चाहते हों वे ही निम्नलिखित पते से प्रवेश पत्र मंगवा सकते हैं।

आध्यात्मिक मंडल,
भर्तृहरि आश्रम,
उज्जैन, (मालवा)।